नरोड़ा आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज (हिंदी विभाग)

बी.ए.सेम-5

पेपर-302,हिंदी भाषा और लिपि

वर्ष-2022-2025

प्रस्तुतकर्ता:- डॉ.जशाभाई पटेल

नाम-
रोल नंबर-

डॉ. जशाभाई पटेल

अभ्यासक्रम-2023-24

यूनिट-1

- भाषा की परिभाषा और लक्षण
- भारोपीय परिवार
- द्रविड़ परिवार

यूनिट-2

- प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएं
- आधुनिक भा.आ.भाषाएँ
- हिंदी की उपभाषाएँ और बोलियाँ

यूनिट-3

- शब्द-समूह
- भाषा विकास (परिवर्तन की दिशाएँ)
- भाषा विकास (परिवर्तन) के कारण

यूनिट-4

- देवनागरी लिपि की विकास यात्रा
- देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता
- हिंदी वर्तनी के नियम

डॉ. जशाभाई पटेल

यूनिट-1

1.भाषा की परिभाषा, स्वरूप एवं अभिलक्षण

2.भारोपीय परिवार

3.द्रविड़ परिवार

1.भाषा की परिभाषा, स्वरूप एवं अभिलक्षण

"भाषा शब्द संस्कृत की भाष धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका कोशीय अर्थ है- कहना या प्रकट करना। अतः भाषा को मनुष्य के भावों या विचारों को प्रकट करने का माध्यम कहा जा सकता है। मनुष्य अपने भावों या विचारों के आदान-प्रदान के लिए ज्ञानेन्द्रियों को माध्यम बनाता है। उस व्यवस्था को पारिभाषित करना यद्यपि जटिल है किन्तु प्राचीनकाल से विद्वानों ने भाषा को पारिभाषित करने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से कुछ विद्वानों के विचार अवलोकनीय है।

भाषा की परिभाषा-

पाश्चात्य मत

1.क्रोचे- **"Language is articulate, limited, organised sound employed in expression."**

(अर्थात् 'अभिव्यंजना के लिए प्रयुक्त स्पष्ट, सीमित तथा सुसंगठित ध्वनि को भाषा कहते हैं।')

2. कार्डिनर- **"The common definition of speech is the use of articulate sound symbols for the expression of thought."**

(विचारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यवद्धत व्यक्त और स्पष्ट ध्वनि संकेतों को भाषा कहते है।)

भारतीय मनीषियों में-

संस्कृत में महर्षि पतंजलि ने लिखा है- **"व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्त वाचः॥"**

पतंजलि के अनुसार 'जो वाणी वर्णों में व्यक्त होती है. उसे भाषा कहते है। कालान्तर में पाश्चात्य एवं भारतीय भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा के इस 'व्यक्त वाच को विस्तार से विश्लेषित किया है।

आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों के द्वारा-

1. डॉ० बाबूराम सक्सेना- "जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।"

2. डॉ० मंगलदेव शाखी- "भाषा मनुष्य की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे मनुष्य अपने उच्चारणापयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किए गए वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।"

3. डॉ० भोलानाथ तिवारी - "भाषा, उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज-विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"

4. पी०डी० गुणे - "शब्दों द्वारा हृद्गत नावों तथा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।"

5. सुकुमार सेन - "अर्थवान, कण्ठ से निःसृत ध्वनि-समष्टि ही भाषा है।"

भाषा के अभिलक्षण- अभिलक्षण का अर्थ है मूलभूत लक्षण या Property | जब हम भाषा का सन्दर्भ मानवीय भाषा से लेते हैं तो यह जानना आवश्यक हो जाता है कि मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषतायें या अभिलक्षण कौन-कौन से है ? ये अभिलक्षण ही मानवीय भाषा को अन्य भाषिक सन्दर्भों से पृथक् करते हैं। हॉकिट ने भाषा के सात अभिलक्षणों का वर्णन किया है। अन्य विद्वानों ने भी अभिलक्षणों का उल्लेख करते हुए आठ या नौ तक संख्या मानी है। मूल रूप से 9 अभिलक्षणों की चर्चा की जाती है-

1. यादृच्छिकता,
2. सृजनात्मकता
3. अनुकरणग्राह्यता
4. परिवर्तनशीलता,
5. विविक्तता,
6. द्वैतता
7. भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन,
8. अंतरणता
9.असहजवृत्तिकता

1.यादृच्छिकता-

'यादृच्छिकता' का अर्थ है- माना हुआ। यहाँ मानने का अर्थ व्यक्ति द्वारा नहीं वरन् एक विशेष समूह द्वारा मानना है। एक विशेष समुदाय किसी भाव या वस्तु के लिए जो शब्द बना लेता है, उसका उस भाव से कोई सम्बन्ध नहीं होता। यह समाज की इच्छानुसार माना हुआ सम्बन्ध है। इसीलिए उसी वस्तु के लिए दूसरी भाषा में दूसरा शब्द प्रयुक्त होता है।हमारी भाषा में किसी वस्तु या भाव का किसी शब्द के साथ सहज-स्वाभाविक संबंध नहीं है। वह समाज की इच्छा अनुसार माना हुआ संबंध है । यदि सहज-स्वाभाविक संबंध होता है , तो सभी भाषाओं में एक वस्तु के लिए एक ही शब्द प्रयुक्त होता है। ' पानी ' के लिए सभी भाषाएं ' पानी ' का ही उपयोग करती है। अंग्रेजी शब्द ' वाटर ' का प्रयोग नहीं करती ,ना फारसी शब्द में ' आब और रूसी भाषा में ' बदा ' का प्रयोग। इसलिए सभी भाषाओं के शब्दों में हम यादृच्छिकता पाते हैं , यह यादृच्छिकता शब्द तथा वाक्यों के स्वर पर होते हैं। अतः यादृच्छिकता भाषा का महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण है।

2. सृर्जनात्मकता-

मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषता उसकी सृजनात्मकता है। अन्य जीवों में बोलने की प्रक्रिया में परिवर्तन नहीं होता पर मनुष्य शब्दों और वाक्य विन्यास की सीमित प्रक्रिया से नित्य नए-नए प्रयोग करता रहता है। सीमित शब्दों को ही भिन्न-भिन्न ढंग से प्रयुक्त कर वह अपने भावों को अभिव्यक्त करता है।जैसे – ' नए ' , ' तुम ' , ' वहां ' , ' बुलवाना ' इन चार शब्दों से बहुत सारे नए वाक्यों का सृजन किया जा सकता है –

१ मैंने उसे तुम से बुलवाया।
२ मैंने उन्हें तुमसे बुलवाया।
३ उसने मुझे तुम से बुलवाया।
४ उसने तुम्हें मुझ से बुलवाया।

किंतु पशु-पक्षी अपनी भाषा में इस तरह की नए-नए वाक्य का निर्माण नहीं कर सकते , इसे उत्पादकता भी कहा जा सकता है। यह भाषा की सृजनात्मकता के कारण ही संभव हो सका है।

3.अनुकरणग्राह्यता-

मानवेतर प्राणियों की भाषा जन्मजात होती है तथा वे उसमें अभिवृद्धि या परिवर्तन नहीं कर सकते किन्तु मानवीय भाषा जन्मजात नहीं होती। जन्म से कोई व्यक्ति कोई भी भाषा नहीं जानता , मां के पेट से कोई बच्चा भाषा सीख कर नहीं आता , माता-पिता , भाई-बहन , शिक्षक और विशेष भाषा – भाषी समाज के सदस्य जैसा बोलते हैं , बच्चा भी उन्हीं ध्वनियों का अनुकरण कर बोलने की क्षमता विकसित करता है। भाषा को दूसरे प्राणियों से नहीं सीखते अनुकरण ग्राह्यता के कारण ही एक व्यक्ति भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाएं भी अनुकरण से सीख सकता है। भाषा को सीखने का अनुकरण आरंभ में अपूर्ण होता है परंतु जैसे – जैसे बच्चा बड़ा होने लगता है , अनुकरण कर अपूर्णता को दूर करता है। यदि माता – पिता ' पीने ' के पदार्थ को ' पानी ' तथा ' खाने ' के पदार्थ को ' रोटी ' कहते हैं तो बच्चा भी ' पा ,पानी ' रोती ' और रोटी का उच्चारण करते हुए उच्चारण के अनुकरण की पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। मनुष्य भाषा को समाज में अनुकरण से धीरे-धीरे सीखता है। अनुकरणग्राह्य होने के कारण ही मनुष्य एक से अधिक भाषाओं को भी सीख लेता है। यदि भाषा अनुकरण ग्राह्य न होती तो मनुष्य जन्मजात भाषा तक ही सीमित रहता।

4. परिवर्तनशीलता-

' कुत्ते ' पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक ही प्रकार की और अपरिवर्तित भाषा का प्रयोग करते आ रहे हैं। किंतु मानव भाषा हमेशा परिवर्तित होती आ रही है। एक भाषा सौ वर्ष पहले जैसी थी , आज वैसी नहीं है , और आज से सौ साल बाद वैसी नहीं रहेगी। जैसी संस्कृत भाषा में संस्कृत काल का ' कर्म ' प्राकृत काल में ' कम्म ' और आधुनिक काल में ' काम ' भाषा में परिवर्तन इतनी मंद गति में होती है कि बहुत समय बाद ही इसका पता चल पाता है। इस तरह परिवर्तनशीलता मानव भाषा को वन्यजीवों की भाषा से अलग करती है।साराशंतः मानव-भाषा परिवर्तनशील होती है। वही शब्द दूसरे युग तक आते आते नया रूप ले लेते हैं। पुरानी भाषा में इतने परिवर्तन हो जाते हैं कि नयी भाषा का उदय हो जाता है। संस्कृत से हिन्दी तक की विकास-यात्रा भाषा की परिवर्तनशीलता का उदाहरण है।

5. विविक्तता- (Discreteness)-

मानव भाषा विच्छेद्य है। उसकी संरचना कई घटकों से होती है। **ध्वनि से शब्द और शब्द से वाक्य** विच्छेद्य घटक होते हैं। इस प्रकार **अनेक इकाइयों का योग होने के कारण मानव-भाषा को विविक्त** कहा जाता है। वर्ण के योग से अक्षर,अक्षर के योग से शब्द, शब्द के योग से वाक्य ओर वाक्य के योग से प्रोक्ति के विविध घटक विचार विनिमय करने हेतु एक साथ काम करते हैं। परिणाम स्वरूप विविधता में एक्ता वाला भाव प्रकट होता है।

6. द्वैतता- (Duality)-

भाषा में किसी वाक्य में **दो स्तर होते हैं। प्रथम स्तर पर सार्थक इकाइयों होती हैं और द्वितीय स्तर पर निरर्थक ।** कोई भी वाक्य इन दो स्तरों के योग से ही बनता है। अतः इसे द्वैतता कहा जाता है। भाषा में प्रयुक्त सार्थक इकाइयों को रूपिम और निरर्थक इकाइयों को स्वनिम कहा जाता है। **स्वनिम निरर्थक इकाइयाँ होने पर भी सार्थक इकाइयों का निर्माण करती हैं।** इसके साथ ही ये निरर्थक इकाइयाँ अर्थ भेदक भी होती हैं। जैसे ज+शा+ भा + ई में चार स्वनिम हैं जो निरर्थक इकाइयाँ हैं पर योग से बनी जशाभाई रूपिम सार्थक इकाई है। अगर विचार की न्यूनतम इकाई ' जल ' है तब उसकी

अभिव्यक्ति की न्यूनतम इकाइयां है ज + अ + ल + आ। इस प्रकार रूपिम अगर अर्थद्योतक इकाई है तो स्वनिम अर्थभेदक। इन दो स्तरों से भाषा की रचना होने के कारण भाषा को द्वैत कहा गया है।

7. भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन-

भाषा में **दो पक्ष होते हैं वक्ता और श्रोता**। वार्ता के समय दोनों पक्ष अपनी भूमिका को परिवर्तित करते रहते हैं। वक्ता श्रोता और श्रोता वक्ता होते रहते हैं। इसे ही भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन कहते हैं।

8. अंतरणता –

मानवेतर जीवो की भाषा केवल वर्तमान के विषय में सूचना दे सकती है , भूतकाल या भविष्य के विषय के लिए नहीं। इसके विपरीत मानव भाषा वर्तमान काल में प्रस्तुत होते हुए भी भूत या भविष्य के विषय में विश्लेषण करने में सक्षम सिद्ध होती है। इस तरह मानव की भाषा कालांतरण कर सकती है , ऐसे ही पशु – पक्षियों की भाषा प्रायः आस – पास के बारे में सूचना दे सकती है। जहां भाषा व्यापार हो रहा है दूर के स्थान के विषय में नहीं , किंतु मानव भाषा आस-पास के अलावा दूर के स्थान के विषय में बताते हुए सूचना दे सकती है। इस तरह वह स्थान का अंतरण कर रही है इस प्रकार अंतरण मानव भाषा का एक महत्वपूर्ण गुण है। इस अभिलक्षण का ही परिणाम है कि हम भाषा में ' भूतकाल ' और ' भविष्यकाल ' की रचनाएं बना पाते हैं।मानव भाषा भविष्य एवं अतीत की सूचना भी दे सकती है तथा दूरस्थ देश की भी। इस प्रकार काल की अंतरण की विशेषता केवल मानव भाषा में है।

9. असहजवृत्तिकता- (Non Instinctivity)-

मानवेतर भाषा प्राणी की सहज वृत्ति आहार निद्रा, भय, मैथुन से ही सम्बद्ध होती है और इसके लिए वे कुछ ध्वनियों का उच्चारण करते है किन्तु मानव-भाषा सहजवृत्तिक नहीं होती है। वह सहजात वृत्तियों से सम्बन्धित नहीं होती। भाषा के ये अभिलक्षण मानवीय भाषा को अन्य ध्वनियों या मानवेतर प्राणियों से अलग करने में समर्थ हैं।

निष्कर्षतःकहा जा सकता है कि भाषा मानव मुख से निकली वह सार्थक ध्वनियां है , जिसके माध्यम से विचारों का आदान – प्रदान किया जा सकता है। व्याकरण के अनुसार केवल वह ध्वनि की भाषा के अंतर्गत आ सकते हैं। जिसके माध्यम से विचार – विनिमय हो सकता है जीव जंतु आदि के द्वारा उत्पन्न ध्वनि अथवा संकेत भाषा नहीं कहलाते। मानव द्वारा उच्चारित सार्थक ध्वनि संकेत का व्याकरणिक तौर पर अध्ययन अथवा विश्लेषण किया जा सकता है।भाषा परिवर्तनशील है जगह – जगह पर भाषा अपना रुप बदल देती है। इसीलिए कबीर ने भाषा को ' बहता नीर ' कहा है।

2. भारोपीय परिवार

नामकरण:

'इंडो-जर्मेनिक' एवं 'भारत-हित्ती' - ये दोनों नाम चल नहीं पाए। विद्वानों को ये नाम स्वीकार न हो सके। भारत-यूरोपीय (इंडो-यूरोपीयन) नाम का प्रयोग पहले-पहले फ्रांसीसियों ने किया। भारत-यूरोपीय नाम इस परिवार की भाषाओं के भौगोलिक विस्तार को अधिक स्पष्टता से व्यक्त करता है । यद्यपि यह भी सर्वथा निर्दोष नहीं है। इस वर्ग की भाषाएँ न तो समस्त भारत में बोली जाती हैं और न समस्त यूरोप में। भारत एवं यूरोप में अन्य भाषा परिवारों की भाषाएँ भी बोली जाती हैं। यह नाम अन्य नामों की अपेक्षा अधिक मान्य एवं प्रचलित हो गया है तथा भारत से लेकर यूरोप तक इस परिवार की भाषाएँ प्रमुख रूप से बोली जाती हैं, इन्हीं कारणों से इस नाम को स्वीकार किया जा सकता है।

भारोपीय परिवार का महत्व

विश्व के भाषा परिवारों में भारोपीय का सर्वाधिक महत्व हैं। यह विषय, निश्चय ही सन्देह एवं विवाद से परे हैं। इसके महत्व के अनेक कारणों में से सर्व प्रथम, तीन प्रमुख कारण यहाँ उल्लेख है-

- विश्व में इस परिवार के भाषा-भाषियों की संख्या सर्वाधिक है।
- विश्व में इस परिवार का भौगोलिक विस्तार भी सर्वाधिक है।
- विश्व में सभ्यता, संस्कृति, साहित्य तथा सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से भी इस परिवार की प्रगति सर्वाधिक हुई है।
- 'तुलनात्मक भषाविज्ञान' की नींव का आधार भारोपीय परिवार ही है।
- भाषाविज्ञान के अध्ययन के लिये यह परिवार प्रवेश-द्वार है।
- विश्व में किसी भी परिवार की भाषाओं का अध्ययन इतना नहीं हुआ है, जितना कि इस परिवार की भाषाओं का हुआ है।
- भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए इस परिवार में सभी सुविधाएँ हैं। जैसे- (क) व्यापकता, (ख) स्पष्टता, तथा (ग) निश्चयात्मकता।
- प्रारम्भ से ही इस परिवार की भाषाओं का, भाषा की दृष्टि से, विवेचन होता रहा है, जिससे उनका विकासक्रम स्पष्ट होता है।
- संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि इस परिवार की भाषाओं का प्रचुर साहित्य उपलब्ध है, जो प्राचीन काल से आज तक इन भाषाओं के विकास का ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत करता है और जिसके कारण इस परिवार के अध्ययन में निश्चयात्मकता रहती है।

● अपने राजनीतिक प्रभाव की दृष्टि से भी यह परिवार महत्वपूर्ण है। कारण, प्राचीनकाल में भारत ने तथा आधुनिक काल में योरोप ने विश्व के अन्य अनेक भू-भागों पर आधिपत्य प्राप्त करके अपनी भाषाओं का प्रचार तथा विकास किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त तथा अन्य अनेक कारणों से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि विश्व के भाषा-परिवारों में 'भारोपीय परिवार' का महत्व निस्सन्देह सर्वाधिक है। भारतीय आर्यभाषा का महत्व संसार की सभी भाषाओं में सार्वाधिक है। ये भाषाएं समृद्ध साहित्य व्याकरण के सम्मत रूप और प्रयोग आधार पर अपनी पहचान के साथ सामने आई है।

भारोपीय परिवार की भाषाएँ-

भारोपीय परिवार की भाषाओं को 'सप्तम्' और 'केंतुम्' दो वर्गों में रक्खा गया है।

केंतुम् वर्ग

1. केल्टिक - आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व इस शाखा के बोलने वाले मध्य यूरोप, उत्तरी इटली, फ्रांस अब आयरलैण्ड, वेल्स, स्काटलैंड, मानद्वीप और ब्रिटेनी तथा कार्नवाल के ही कुछ भागों में इसका क्षेत्र शेष रह गया है।

2. जर्मनिक - यूरोप की दो प्रमुख भाषाएँ अंग्रेज़ी और जर्मनी इसी वर्ग की भाषाएँ हैं। इस शाखा की उत्तरी उपशाखा में स्वीडन, डेनमार्क और नार्वे की भाषाएँ (स्वीडिश, डेनिश और नार्वीजियन) आती हैं। अंग्रेज़ी पश्चिमी उपशाखा की ही भाषा थी, जिसका व्यवहार आंग्ल और सैक्सन नामक जातियाँ करती थीं। इन्होंने इंग्लैंड पर आक्रमण कर उसपर आधिपत्य किया। इसी कारण पुरानी अंग्रेज़ी को एंग्लो-सैक्सन भी कहा जाता था। डच, जर्मन इस शाखा की अन्य प्रमुख भाषाएँ हैं। पूर्वी उपशाखा में पुरानी भाषा गाथिक का नाम उल्लेखनीय है, जिसमें पाँचवीं शताब्दी के लेख मिलते हैं। यह उपशाखा लुप्तप्राय हैं।

3. लैटिन - इसका नाम इटाली भी है। इसको सबसे पुरानी भाषा लैटिन है, जो आज रोमन कैथलिक सम्प्रदाय की धार्मिक भाषा है। आरम्भ में लैटिन शाखा का प्रधान क्षेत्र इटली में था।

4. ग्रीक - इस शाखा में कुछ भौगोलिक कारणों से बहुत पहले से छोटे-छोटे राज्य और उनकी बहुत-सी बोलियाँ हो गई हैं। इसके प्राचीन उदाहरण महाकवि होमर के इलियड और ओडिसी महाकाव्यों में मिलते हैं। इनका समय एक हज़ार ई. पू. माना जाता है। ये दोनों महाकाव्य अधिक दिन तक मौखिक रूप में रहने के कारण अपने मूल रूप में आज नहीं मिलते, फिर भी उनसे ग्रीक के पुराने रूप का कुछ पता तो चल ही जाता है। ग्रीक भाषा बहुत-सी बातें में वैदिक संस्कृत से मिलती-जुलती है। जब ग्रीस उन्नति पर था होमरिक ग्रीक का विकसित रूप ही साहित्य में प्रयुक्त हुआ। उसकी बोलियाँ भी उसी समय अलग-अलग हो गई। एट्टिक बोली का लगभग चार सौ ई. पू. में बोलबाला था, अत: यही भाषा यहाँ की राज्य भाषा हुई। आगे चलकर इसका नाम 'कोइने' हुआ और यह शुद्ध एट्टिक से धीरे-धीरे कुछ दूर पड़ गई और एशिया माइनर तक इसका प्रचार हुआ। उधर मिस्र आदि में भी यह जा पहुंची और स्वभावत: सभी जगह की स्थानीय विशेषताएँ इसमें विकसित होने लगीं।

सतम् वर्ग

भारोपीय परिवार की सतम् वर्ग की शाखाओं को इस प्रकार दिखाया जा सकता है-

1. इलीरियन - इस शाखा को 'अल्बेनियन' या 'अल्बेनी' भी कहते हैं। अल्बेनियन के बोलने वाले अल्बेनिया तथा कुछ ग्रीस में हैं। इसके अन्तर्गत बहुत सी बोलियाँ हैं, जिनके घेघ और टोस्क दो वर्ग बनाये जा सकते हैं। घेघ का क्षेत्र उत्तर में और टोस्क का दक्षिण में है। अल्बेनियन साहित्य लगभग 17वीं सदी से आरम्भ होता है। इसमें कुछ लेख 5वीं सदी में भी मिलते हैं। इधर इसने तुर्की, स्लावोनिक, लैटिन और ग्रीक आदि भाषाओं से बहुत शब्द लिए हैं। अब यह ठीक से पता चलाना असंभव-सा है कि इसके अपने पद कितने हैं। इसका कारण यह है कि ध्वनि-परिवर्तन के कारण बहुत घाल-मेल हो गया है। बहुत दिनों तक विद्वान् इसे इस परिवार की स्वतंत्र शाखा मानने को तैयार नहीं थे किन्तु जब यह किसी से भी पूर्णत: न मिल सकी तो इसे अलग मानना ही पड़ा।

2. बाल्टिक - इसे लैट्टिक भी कहते हैं। इसमें तीन भाषाएँ आती हैं। इसका क्षेत्र उत्तर-पूरब में है। यह रूस के पश्चिमी भाग में लेटिवियाव राज्य की भाषा है।

3.स्लाव-विभाजन,भाषाएँ और क्षेत्र:पूर्वी-रूसी(रूस),श्वेत रूसी (रूस के दक्षिणी भाग में),लघु रूसी(उक्रेन में)।पश्चिमी-पोलिश(पोलैंड), चेक(चेकोस्लोवाकिया),।दक्षिणी-बुल्गारियन(बुल्गारिया), सर्बो-क्रोशियन,स्लोवेनियम(युगोस्लाविया)।

4. आर्मेनियन या आर्मीनी - इसे कुछ लोग आर्य परिवार की ईरानी भाषा के अन्तर्गत रखना चाहते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि इसका शब्द-समूह ईरानी शब्दों से भरा है। पर, ये शब्द केवल उधार लिये हुए हैं। 5वीं सदी में ईरान के युवराज आर्मेनिया के राजा थे, अत: ईरानी शब्द इस भाषा में अधिक आ गये। तुर्की और अरबी शब्द भी इसमें काफ़ी हैं। इस प्रकार आर्य और आर्येतर भाषाओं के प्रभाव इस पर पड़े हैं। इसके व्यंजन आदि संस्कृत से मिलते हैं। जैसे फ़ारसी 'दह' और संस्कृत 'दशन्' के भाँति 10 के लिए इसमें 'तस्न' शब्द है।

आर्मेनियन के प्रधान दो रूप हैं। एक का प्रयोग एशिया में होता है और दूसरे का यूरोप में। इसका क्षेत्र कुस्तुनतुनिया तथा कृष्ण सागर के पास है। एशिया वाली बोली का नाम अरारात है और यूरोप में बोली जाने वाली का स्तंबुल।

5..भारत ईरानी -भारत-ईरानी शाखा भारोपीय परिवार की एक शाखा है। इस शाखा में भारत की आर्य भाषाएँ हैं, दूसरी तरफ ईरान क्षेत्र की भाषाएँ हैं जिनमें फ़ारसी प्रमुख है। इन दोनों को एक वर्ग में रखने का भाषा वैज्ञानिक आधार यही है कि दोनों भाषाओं में काफ़ी निकटता है। क्या दोनों उपशाखाओं

की भाषाएँ बोलने वाले कभी एक थे और बाद में उनकी भाषाओं में अधिक अंतर आने लगा? ईरान के निवासी भी आर्य थे। ईरान शब्द ही 'आर्यों का' (आर्याणम्) का बदला हुआ रूप लगता है। प्राचीन ईरानी भाषा 'अवेस्ता' में आर्य का रूप 'ऐर्य' था। यह संबंध काल्पनिक नहीं है, प्राचीन युग में भारत और ईरान में धर्म का स्वरूप एक था, दोनों की भाषाओं (अवेस्ता और संस्कृत) में बहुत समानता थी। क्या ये लोग किसी तीसरी जगह से आकर इन दोनों क्षेत्रों में अलग-अलग बस गये थे? इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। लेकिन यह बात निर्विवाद है कि भारत और ईरान के आर्य एक ही मूल के थे।

3.द्रविड़ भाषा परिवार -

द्रविड़ भाषाएँ भारत के दक्षिण में बोली जाती हैं। ये हैं तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम। इसकी प्रमुख भाषाएँ और क्षेत्र ये हैं-
तमिल (तमिललाड़ु)
तेलुगु (आन्ध्र प्रदेश)
कन्नड़ (कर्णाटक)
मलयालयम (केरल)।

इसी परिवार में गोंडी (मध्य प्रदेश, बुन्देलखंड), कुरुख या ओराओं (बिहार, उड़ीसा), ब्राहुई (बलूचिस्तान) भाषाएँ भी हैं।

1. तमिल - तमिल भाषा द्रविड़ भाषाओं में सबसे प्राचीन है। इसमें उपलब्ध साहित्य से स्पष्ट है कि इसका समय ईसा पूर्व की शताब्दियों का है। तमिल का सबसे पुराना उपलब्ध साहित्य संघ साहित्य है। 'तमिल' शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में कोई निश्चित मत नहीं है। कुछ विद्वान मानते हैं कि द्रविड़ से ही तमिल बना। तमिल भाषी विद्वान मानते हैं कि अभिष्तु (त्र अमृत, मधु, शहद) के विपर्यय से 'तमिल' शब्द बना। तमिल भाषा का क्षेत्र आज का तमिलनाडु राज्य है, जो पहले मद्रास प्रांत कहलाता था। यह तमिलनाडु की राजभाषा है।
तमिल भाषा की अपनी लिपि है जो ब्राह्मी के दक्षिणी रूप से व्युत्पन्न है। इसलिए इसमें कई वर्ण देवनागरी वर्णों के समान हैं। तमिल में महाप्राण ध्वनियाँ नहीं हैं। अत: व्यंजनों की संख्या सिर्फ़ 18 है। तमिल भाषा में संस्कृत और उर्दू से लिए हुए कई शब्द हैं, हालाँकि तमिल की साहित्यिक भाषा में मूल तमिल शब्दों का प्रयोग अधिक होता है।

2. मलयालम - मलयालम आज के केरल राज्य की राजभाषा है। मलयालम भाषा का इतिहास बहुत पुराना नहीं है।15वीं शताब्दी में ही इसमें साहित्य रचना का प्रारंभ हुआ। इसका उद्भव काल ईसा की 13वीं शताब्दी के आसपास है। मलयालम की लिपि तमिल लिपि से मिलती है। लेकिन इसमें देवनागरी के समान सारे वर्ण हैं। इसमें सारे महाप्राण व्यंजन लिखे जाते हैं, फिर भी उच्चारण की पद्धति हिंदी के अनुसार नहीं है। तमिल और मलयालम दोनों की उच्चारण व्यवस्था द्रविड़ शाखा की उच्चारण व्यवस्था के अनुरूप है।

3. कन्नड़ - यह कर्नाटक राज्य की राजभाषा है। कन्नड़ संभवतया द्रविड़ परिवार की भाषाओं में प्राचीनतम की दृष्टि से दूसरे स्थान पर है। इसमें ईसा की सातवीं शताब्दी के शिलालेख मिलते हैं। उस समय के मध्ययुग तक की कन्नड़ भाषा को पुरानी कन्नड़ (हले कन्नड) कहा जाता है, जो रूप में नयी कन्नड़ (होस कन्नड) से भिन्न है। दसवीं शताब्दी में ही कन्नड़ में साहित्य रचना प्रारंभ हो गयी थी।

4. तेलुगु - तेलुगु वर्तमान आंध्र प्रदेश की भाषा है, वहाँ की राजभाषा है। दक्षिण उड़ीसा, उत्तर तमिलनाडु, पूर्वी कर्नाटक आदि क्षेत्रों में भी कई तेलुगु भाषा भाषी है।तेलुगु भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ नन्नय का महाभारत है, जिसका रचना काल 1000 ई. है। तेलुगु और कन्नड़ भाषा की लिपि एक ही है, सिर्फ कुछ वर्णों के आकारों में अंतर है और मात्रा लिखने की शैली भिन्न है। आधुनिक युग में दोनों भाषाओं की एक लिपि के निर्माण के प्रयत्न हुए हैं, लेकिन अभी तक एकीकरण संभव नहीं हो पाया है।
द्रविड़ भाषाओं में मलयालम के बाद तेलुगु में सबसे अधिक संस्कृत शब्द हैं। आधुनिक युग तक के तेलुगु काव्य में बड़ी संख्या में संस्कृत शब्दों का प्रयोग होता रहा। संस्कृत जैसे ही विस्तृत समासों का प्रयोग होता रहा।

अन्य द्रविड़ भाषाओं और उनके स्थान का विवरण इस प्रकार है -

तुलु : कर्नाटक प्रदेश में मंगलूर आदि क्षेत्रों में व्यवहृत हैं। यह कन्नड़ लिपि में लिखी जाती है।
कोडगु या कूर्ग : यह उत्तरी कर्नाटक में कूर्ग क्षेत्र की भाषा है।
तोडा : यह तमिलनाडु के नीलगिरि ज़िले की तोडा जनजाति की भाषा है।
गोंडी : इसका स्थान आंध्र प्रदेश है।
कुई : इसका स्थान उड़ीसा प्रदेश है।
कुडुख या ओराँव : इसका स्थान बिहार और उड़ीसा है।
माल्तो : यह पहाड़ियों में बोली जाती है।

द्रविड़ भाषा परिवार की एक भाषा ब्राहुई है, जो आज भी अफ़गानिस्तान में बोली जाती है। इस बात की संभावना कम है कि दक्षिण भारत से द्रविड़ अफ़गानिस्तान तक गये हों। द्रविड़ भारत के मूल निवासी थे और उत्तर भारत में रहते थे।

द्रविड़ भाषा परिवार की मुख्य विशेषताएं

- इस परिवार की भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक हैं।
- इनमें ए-ए, ओ-ओ हस्व और दीर्घ दोनों हैं।
- इनमें यूराल-अल्ताई परिवार के तुल्य स्वर-अनुरूपता है।
- इनमें अन्तिम व्यंजन के बाद अतिलघु अ जोड़ा जाता है।
- संज्ञाओं का विभाग विवेकी-अविवेकी का उच्च जातीय-निम्नजातीय के आधार पर होता है।
- दो वचन और तीन लिंग हैं। लिग् का निर्धारण जीवित या निर्जीव वस्तु के आधार पर होता है। लिंग-बोध के लिए 'पुरुष' या 'स्त्री' वाचक शब्द जोड़े जाते हैं।
- विशेषणों के रूप संज्ञा के अनुसार नहीं चलते हैं।
- विभक्तियों का काम परसर्गों या प्रत्ययों से लिया जाता है।
- क्रिया में कृदन्त रूपों की अधिकता है। कर्मवाच्य नहीं होता है।
- 'निषोधात्मक वाच्य' भी होता है। इसमें लुङ् लकार होता है।
- मूर्धन्य (टवर्ग) ध्वनियों की प्रधानता है।

यूनिट-2
प्राचीन एवं मध्यकालीन आर्य भाषाएँ
आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ
हिंदी की उपभाषाएँ एवं बोलियाँ

भारतीय आर्यभाषा का विभाजन-

भारतीय आर्यभाषा की पूरी श्रृंखला को 3 भागों में विभाजित किया जाता है-

प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएं (प्रा0 भा0 आ0) – 1500 ई0 पँ0 से 500 ई0 पू0 तक।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएं (म0 भा0 आ0) – 500 ई0 से 1000 ई0 पू0 तक।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं (आ0 भा0 आ0) – 1000 ई0 सन् से अब तक।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ-

इनका समय 1500 ई0 पू0 तक माना जाता है। वस्तुत: यह विवादास्पद विषय है। इस वर्ग में भाषा के दो रूप अपलब्ध होते है- (i) वैदिक या वैदिक संस्कृत, (ii) संस्कृत या लौकिक संस्कृत। इन दोनों का भी पृथक-पृथक परिचय अपेक्षित है।

वैदिक या वैदिक संस्कृत –

इसे 'वैदिक भाषा', 'वैदिकी', छान्द या 'प्राचीन संस्कृत' भी कहा जाता है। वैदिक भाषा का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में सुरक्षित है। यद्यपि अन्य तीनों संहिताओं, ब्राह्मणो-ग्रन्थों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि की भाषा भी वैदिक ही है, किन्तु इन सभी में भाषा का एक ही रूप नहीं मिलता। 'ऋग्वेद' के दूसरे मण्डल से नौवें मण्डल तक की भाषा ही सर्वाधिक प्राचीन है। यह 'अवेस्ता' के अत्यधिक निकट है। शेष संहिताओं तथा अन्य ग्रन्थों में भाषा ही प्राचीनतम है, जिनमें आर्यो का वातावरण तत्कालीन पंजाब के वातावरण से मिलता-जुलता वर्णित है। इसी प्रकार वैदिक भाषा के दो अन्य रूप-दूसरा और तीसरा भी वैदिक साहित्य में मिलते हैं। दूसरे रूप मध्यदेशीय भारत का तथा तीसरे रूप पूर्वी भारत का प्रभाव लक्षित होता है। ज्ञात होता है कि वैदिक भाषा का प्रवाह अनेक शताब्दियों तक रहा होगा।

विद्वानों का विचार है कि वैदिक भाषा का जो रूप हमें आज वैदिक साहित्य, विशेषत: ऋग्वेद में मिलता है, वह तत्कालीन साहित्यक भाषा ही थी, बोलचाल की भाषा नहीं। तत्कालीन बोलचाल की भाषा को जानने का कोई साधन आज हमें उपलब्ध नहीं है।

वैदिक भाषा की विशेषताएँ

प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट स्वरूप होता है। प्रत्येक भाषा अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण अपना पृथक् अस्तित्व रखती है। किसी भाषा की ऐसी विशेषताएँ ही उसे अन्य भाषाओं से पृथक् करती हैं। इस दृष्टि से **वैदिक भाषा की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं यहां प्रस्तुत हैं :-**

- वैदिक भाषा में 'ऌ' स्वर का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।
- प्राचीन वैदिक भाषा में 'ल्' के स्थान पर प्राय: 'र्' का व्यवहार मिलता है; जैसे – 'सलिल' के स्थान पर 'सरिर'।
- वैदिक भाषा में उपसर्गों का प्रयोग स्वतन्त्रा रूप से होता था।
- पदरचना की दृष्टि से वैदिक भाषा श्लिष्टयोगात्मक है। जैसे – 'गृहाणाम्', यहां 'गृह' प्रकृति तथा 'नाम्' प्रत्यय स्पष्ट रूप से पहचाने जाते हैं।

संक्षेप में, वैदिक भाषा में प्रयोगों की अनेकरूपता को देखने से प्रतीत होता है कि आज वैदिक भाषा का जो स्वरूप हमें उपलब्ध होता है, वह तत्कालीन अनेक बोलियों का मिला-जुला रूप है, जिनमें देश-भिन्नता तथा काल-भिन्नता, दोनों का ही होना संभव है। संभवत:, उस काल की जनसामान्य की विविध बोलियों का ही, हिन्दी में खड़ी बोली के समान, एक परिनिष्ठित साहित्यिक रूप वह वैदिक भाषा है, जो हमें आज 'ऋग्वेद' आदि में उपलब्ध होती है।

लौकिक संस्कृत भाषा--प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का दूसरा 'संस्कृत' है। इसी को 'लौकिक संस्कृत' या 'क्लासिकल संस्कृत' भी कहा जाता है। यूरोप में जो स्थान 'लैटिन' भाषा का है, वही स्थान भारत में संस्कृत का है। भारत में 'रामायण' 'महाभारत' से भी पहले से लेकर आज तक संस्कृत में साहित्य रचना हो रही है। गुप्तकाल में संस्कृत की सर्वाधिक उन्नति हुई थी। इसका साहित्य विश्व के समृद्धतम साहित्यों में से एक है। 'वाल्मीकि', 'व्यास', 'कालीदास', आदि इसकी महान् विभूतियाँ हैं। विश्व-विख्यात महाकवि कालीदास का 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' नाटक संस्कृत भाषा श्रृंगार है। विश्व की अनेक भाषाओं में संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद हुआ है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत का महत्व बहुत अधिक है। संस्कृत के अध्ययन के कारण ही यूरोप में आधुनिक युग में 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' का प्रारम्भ हुआ है।संस्कृत का विकास उत्तरी भारत में बोली जाने वाली वैदिककालीन भाषा से माना जाता है, यद्यपि भारत के मध्य भाग तथा पूर्वी भाग की बोलचाल की भाषाओं का प्रभाव भी उसपर रहा होगा। लगभग 8 शताब्दी ईपू. में इसका प्रयोग साहित्य में होने लगा था। यह वह अवस्था है, जब संस्कृत की आधारभूत भाषा का प्रयोग बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा दोनों के रूप में हो रहा था। अनुमान किया जाता है कि लगभग ई. पू. 5 वीं शताब्दी या कुछ क्षेत्रों में उसके बाद तक संस्कृत की आधारभूत यह भाषा बोली जाती थी और तब तक उत्तर भारत में कई अन्य ऐसी बोलियाँ भी जन्म ले चुकी थीं, जिनसे आगे चलकर अनेक प्राकृतों, अपभ्रंश तथा आधुनिक आर्यभाषाओं का विकास हुआ है।

लगभग ई. पू. 5 वीं शताब्दी या 7 वीं शताब्दी में 'पाणिनी' ने संस्कृत की उस आधारभूत भाषा को व्याकरण के नियमों से बद्ध करके एकरूपता प्रदान की ओर यह भाषा 'संस्कृत' कहलाने लगी। अर्थात् अपने स्वाभाविक विकास के कारण, नियन्त्रण के हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अभाव में जो भाषा प्राकृत (विकृत) रूप में चल रही थी, वह तब 'संस्कृत' हो गयी। उसका संस्कार कर दिया गया, उसे शुद्ध रूप प्रदान कर दिया गया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस काल में 'संस्कृत' साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण कर रही थी, उस समय भारत में स्वयं साहित्यिक संस्कृत की आधारभँत बोली तथा उससे मिलती-जुलती कई अन्य बोलियाँ भी व्यवहार में थी, किन्तु उन सबमें 'संस्कृत' ही शिष्ट, साहित्यिक या राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी।

संस्कृत भाषा की विशेषताएँ-

संस्कृत, लौकिक संस्कृत वा क्लास्किल संस्कृत की सबसे प्रमुख विशेषता पाणिनिकृत नियमबद्धता है। संस्कृत की विशेषता ही उसे वैदिक से पृथक् करती है।

- पाणिनिकृत नियमों (अष्टाध्यायी-सूत्रों) के द्वारा उसमें शब्द-रूपों तथा क्रियारूपों में एकरूपता आ गयी है।'लट्' लकार का प्रयोग समाप्त हो गया है।
- एक ही अर्थ में प्रयुक्त अनेक प्रत्ययों के स्थान पर केवल एक ही प्रत्यय का प्रयोग रूढ़ हो गया; जैसे तुमुन्', 'क्त्वा' आदि।
- अनेक वैदिक शब्दों का प्रयोग संस्कृत में भिन्न अर्थों में होने लगा; जैसे-
- शब्द वैदिक-अर्थ संस्कृत-अर्थ
- अराति = शत्रुता = शत्रु
- अरि = ईश्वर, धार्मिक शत्रु, = केवल शत्रु
- न = उपमावाचक (जैसा), = निषेधवाचक (नहीं)
- निषेधवाचक (नहीं)

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ

लौकिक संस्कृत एक तरफ व्याकरण का आधार पाकर अपने निश्चित रूप में स्थिर हो गई, तो दूसरी तरफ लोक-भाषा तेजी से विकसित हो रही थी। इसी विकास के परिणामस्वरूप प्राकृत भाषा का विकास-काल ई.पू. 500 से 1000 ई. माना जाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के तीन रूप स्पष्ट दिखाई देते हैं-

1.पाली

यह प्राकृत का प्रारम्भिक रूप है जिसका समय 500 ई0 पू0 के प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ तक माना गया है। इसकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि संस्कृत की उत्पत्ति प्राकृत से हुई है। एक अन्य मत के अनुसार संस्कृत के समानान्तर, लोकभाषा से इसका उद्भव हुआ है। इसमें प्रथम मन्तव्य अधिक उपयुक्त लगता है।

पाली-व्युत्पति

इसकी व्युत्पति के विषय में विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने ढंग से विचार प्रस्तुत किए गए हैं –भिक्षु सिद्धार्थ के अनुसार पाठ > पालि।
भिक्षु जगदीश काश्यप के अनुसार परियाय (बुद्ध उपदेश) > पलियाय > पालियाय > पालि
आचार्य विधु शेखर के अनुसार पंक्ति > पंति > पंति > पल्लि > पालि।
डाँ0 मेक्स वेलसन के अनुसार पाटिल (पटना) > पाडलि > पालि।

विशेषताएँ

- इसमें से ऋ, ऌ, ऐ, औ, श, ष, तथा विसर्ग आदि वैदिक ध्वनियाँ लुप्त हो गई हैं।
- मनकचमें प्राय: संस्कृत की ए ध्वनि ऐ और ओ ध्वनि औ हो गई है; यथा-कैलाश > केलाश, गौतम > गोतम।
- इसमें विसर्ग सन्धि नहीं है।
- पाली में तीनों लिंग हैं।
- द्विवचन की व्यवस्था नहीं है।
- इसमें बलाघात का प्रयोग होता है।
- पाली में परम्परागत तद्भव शब्दों की बहुलता है।

2.प्राकृत

इसे द्वितीय प्राकृत और साहित्यिक प्राकृत भी कहते हैं। इसका काल प्रथम शताब्दी से 5वीं शताब्दी तक है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके भिन्न-भिन्न रूप विकसित हो गये थे।

1.मागधी –

इसका विकास मगध के निकटवर्ती क्षेत्र में हुआ। इसमें कोई साहित्यिक कृति उपलब्ध नहीं है।

विशेषताएँ

- इसमें -, स का – रूप हो जाता है; यथा – सप्त > -त्त, पुरू- > पुलिस।
- इसमें र का ल हो जाता है; यथा – पुरुष > पुलिश
- ज के स्थान पर य हो जाता है, यथा – जानाति > याणदि।

2.अर्ध–मागधी –

यह मागधी तथा शौरसेनी के मध्य बोली जाने वाली भाषा थी। यह जैन साहित्य की भाषा थी। भगवान महावीर के उपदेश इसी में है।

विशेषताएँ

- इसमें श, ष, स के लिए केवल स का प्रयोग होता है: यथा- श्रावक > सावग।
- इसमें दन्त्य ध्वनियाँ मँर्धन्य हो जाती है; यथा – स्थिर > ठिय।
- स्पर्श ध्वनि के लोप पर य श्रुति मिलती है; यथा- सागर > सायर, गगन > गयन

3.महाराष्ट्री –

इसका मँल स्थान महाराष्ट है। इसमें प्रचुर साहित्य मिलता है। गाहा सत्तसई (गाथा सप्तशती), गडवहो (गौडवध:) आदि काव्य ग्रन्थ इसी भाषा में है।

विशेषताएँ

- स्वर बाहुल्य और संगीतात्मकता है।

- श, ष, स, का ह हो जाता है; यथा – दश > दह, दिवस > दिवह।
- दो स्वरों के मध्य व्यंजन लोप हो जाता है; यथा- रिपु > रिé, नुपँर > णेउर।
- क्ष का च्छ हो जाता है; यथा- इक्षु > इच्छु।
- कुछ महाप्राण ध्वनियाँ ह में परिवर्तित हो जाती है; यथा- शाखा > शाहा, अथ > अह।

4.पैशाची –

इसका क्षेत्र कश्मीर माना गया है। ग्रियर्सन ने इसे दरद से प्रभावित माना है। साहित्यक रचना की दृष्टि से यह भाषा शून्य है।

विशेषताएँ

- सघोष ध्वनियाँ अघोष हो जाती है: यथा- नगर > नकर।
- र और ल का विपर्यय हो जाता है; यथा- कुमार > कुमाल, रूधिर > लुधिर।
- ष का स या श हो जाता है; यथा- तिष्ठति > तिश्तदि, विषम > विसम।

5.शौरसेनी –

यह मध्य की भाषा थी। इसका केन्द्र मथुरा था। नाटकों में स्त्री-पात्रों के संवाद इसी भाषा में होते थे। दिगम्बर जैन से सम्बधित धर्मग्रन्थ इसी में रचे गए हैं।

विशेषताएँ

- इसमें क्ष का क्ख हो जाता है; यथा- चक्षु > चक्खु।
- इसमें न ध्वनि ण हो जाती है; यथा- नाथ > णाथ।
- इसमें आत्मनेपद लगभग समाप्त है, केवल परस्मैपद मिलता है।

3.अपभ्रंश

इसका शाब्दिक अर्थ है – विकृत या भ्रष्ट। इसका प्राचीनतम रूप भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश के कुछ पद मिलते हैं। अपभ्रंश में अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं हुई हैं; यथा- विद्यापति कृत कीर्तिलता, अद्दहमाण कृत संदेश-रासक आदि। इसका समय 500 ई. से 1000 ई. तक माना जाता है, किन्तु इसमें कुछ एक रचनाएं 14वीं और 15वीं शताब्दी तक होती रही हैं।

विशेषताएँ

- ऋ ध्वनि लेखन में थी, उच्चारण में लुप्त हो चुकी थी।
- श, ष के स्थान पर प्राय: स का प्रयोग होता है।
- इसमें उ ध्वनि की बहुलता है; यथा- जगु, एक्कु, कारणु आदि।
- म के स्थान पर वं ध्वनि होती है; यथा- कमल > कंवल।
- क्ष का क्ख हो जाता है; यथा- पक्षी > पक्खी।
- य ध्वनि ज हो जाती है; यथा- यमुना > जमुना, युगल > जुगल।
- नपुंसक लिंग और द्विवचन लुप्त हो चुके हैं।
- इसमें तद्भव शब्दों की बहुलता मिलती है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं का परिचय एवं हिंदी की उपभाषाएँ

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का उद्भव 1000 ई. के लगभग हुआ है। इस वर्ग की भाषाओं का काल तब से अब तक माना गया है। इस काल में प्रयुक्त भाषाओं की गणना आधुनिक भारत आर्यभाषाओं में की जाती है। इस वर्ग की भाषाओं के विकास के कुछ समय पश्चात् से सम्बन्धित साहित्य प्राप्त होता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों में हुआ है। इसलिए इन दोनों वर्गों की भाषाओं में पर्याप्त समता है और अनेक भिन्न विशेषताओं का भी विकास हुआ है। इस वर्ग की भाषाओं की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके आधार पर इन्हें अन्य वर्ग की भाषाओं से अलग कर सकते हैं।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से हुआ है। इस संदर्भ में अपभ्रंश के सात रूप उल्लेखनीय हैं।

शौरसेनी –	**पश्चिमी हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी**
महाराष्टी –	**मराठी**
मागधी –	**बिहारी, बंगला, उड़ीया, असमी**
अर्ध मागधी –	**पूर्वी हिन्दी**
पैशाची –	**लहंदा, पंजाबी**
ब्राचड़ –	**सिन्धी**
खस –	**पहाड़ी**

आधुनिक भारतीय भाषाओं का परिचय

लहँदा

इसका विकास पैशाची अपभ्रंश से हुआ है। लहँदा का अर्थ है-पश्चिमी। अब वह पश्चिमी पंजाब जो पाकिस्तान है, की भाषा है। यह पश्चिमी, पंजाबी, जटकी तथा 'हिन्दकी' के नाम से भी जानी जाती है। इस पर पंजाबी तथा सिन्धी भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इसकी कई बोलियां विकसित हो गई हैं। इसकी लिपि लंडा है, किन्तु आजकल इसे गुरुमुखी या फारसी में लिखते हैं। इसमें उन्नत या विकसित साहित्य का अभाव है।

पंजाबी

पैशाची अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है। यह पंजाब प्रान्त की भाषा है। पंजाब क्षेत्र की भाषा के कारण इसका नाम पंजाबी हुआ है। यह सिक्ख-साहित्य की मुख्य भाषा है। इस पर दरद का प्रभाव है। इस भाषा का केन्द्र अमृतसर है। पंजाबी भाषा की विभिन्न बोलियों में अधिक अन्तर नहीं है। इसमें समृद्ध लोक-साहित्य है। वर्तमान समय में इससे सम्बन्धित साहित्यकार साहित्यिक रचना में गतिशील हैं। उसकी लिपि गुरुमुखी है।

सिन्धी

इसका विकास ब्राचड़ या बा्रचट अपभ्रंश से हुआ है। सिन्ध क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे सिन्धी कहा गया है। सिन्ध क्षेत्र में सिन्धु नदी के तटीय भागों में यह भाषा बोली जाती है। इसकी कई बोलियाँ हैं, जिनमें बिचौली मुख्य है। इसका साहित्य अत्यन्त सीमित है। सिन्धी भाषा की लिपि लंडा है, किन्तु आजकल इसके लेखन में फारसी लिपि का भी प्रयोग किया जाता है।

गुजराती-

गुजराती का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। यह गुजरात की प्रान्त भाषा है। इस क्षेत्र में विदेशियों का आगमन विशेष रूप से होता है इसलिए इस पर विदेशी भाषा का प्रभाव पड़ा है। प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द का जन्म बारहवीं शताब्दी में गुजरात में हुआ था। गुजराती के आदि कवि नरसिंह मेहता आज भी सम्माननीय स्थान है। गुजराती में पर्याप्त साहित्य मिलता है। इसकी लिपि पहले देवनागरी थी, अब देवनागरी से विकसित लिपि गुजराती है।

मराठी

इसका विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है। महाराष्ट्र क्षेत्र या प्रदेश के नाम पर ही महाराष्ट्री और नाम पड़ा हैं विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने के कारण चार विभिन्न क्षेत्रों में इसके चाररूप उभर आए हैं मराठी का अपना समृद्ध साहित्य है। नामदेव, ज्ञानेश्वर, रामदास तथा तुकाराम आदि इसके प्रमुख कवि हैं। इसमें पर्याप्त सन्त साहित्य है। इसकी लिपि देवनागरी है।

बंगला

इसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। बंगला इसका क्षेत्र हैं गाँव तथा नगर की बंगला में भिन्नता है। इसी प्रकार पँर्वी तथा पश्चिमी क्षेत्र की बंगला में भी भिन्नता है। पूर्वी बंगला का मुख्य केन्द्र ढाका है, जो अब बंगलादेश में है। हुगली नदी के निकट क्षेत्र की नगरीय बंगला ही साहित्यक भाषा बन गई है। परम्परागत तत्सम शब्दों की संख्या सर्वाधिक रूप में बंगला में ही मिलती है।

इसकी अनेक विशेषताओं में ''अ'' तथा ''स'' का ''श'' उच्चारण प्रसिद्ध है। बंगला साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न भाषा है। रविन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्चन्द्र, बंकिमचन्द्र, चण्डीदास तथा विजयगुप्त आदि इस भाषा के प्रमुख साहित्यकार हैं। प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री ''बंगाला'' का उद्भव एवं विकास के लेखक डाँ0 सुनीतिकुमार चटर्जी का नाम भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसकी लिपि बंगला है, जो पुरानी नागरी से विकसित हुई है। देवनागरी और बंगला लिपि में पर्याप्त साम्य है।

उड़िया

उड़िया का विकास मागधी अप्रभ्रंश से हुआ है। उड़िसा प्रदेश की भाषा होने के कारण इसे उड़िया कहा जाता है। उडीसा को ''उत्काल' नाम से संबोधित किया जाता था, इसलिए इसे ''उत्कली'' भी कहते हैं। उड़िया का शुद्ध रूप ओड़िया है इसलिए इसे ''ओड़ी'' भी कहते है। बंगला तथा उड़िया भाषा में पर्याप्त समानता है। इस भाषा पर मराठी तथा तेलुगू का काफी प्रभाव है, क्योंकि यह क्षेत्र एक लम्बे समय तक ऐसे भाषा-भाषी राज्याओं के शासन में रहा है। इसमें परम्परागत तत्सम शब्द पर्याप्त रूप से कृष्ण भक्तिपरक रचनाएँ मिलती हैं। इसकी लिपि उड़िया है, पुरानी नागरी से विकसित हुई है।

असमी

मागधी अपभ्रंश से विकसित भाषाओं में असमी एक भाषा है। असमी, आसामी, असमीया, असामी आदि नामों से जानी जाने वाली यह भाषा आसाम या असम प्रान्त की भाषा है। इसमें तथा बंगला में बहुत कुछ साम्य है। यह साहित्य सम्पन्न भाषा है। इसके प्राचीन साहित्य में ऐतिहासिक ग्रन्थों का विशेष महत्व है। इसके प्रसिद्ध साहित्यकार हैं-शंकरदेव, महादेव तथा सरस्वती आदि। इसकी लिपि बंगला है, किन्तु इसमें कुछ एक ध्वनि चिह्न सुधार लिए गए हैं।

आधुनिक आर्य भाषाएँ (एवं हिंदी की उपभाषाएँ-)

- **पश्चिमी हिंदी**
- **पूर्वी हिंदी**
- **बिहारी**
- **राजस्थानी**
- **पहाड़ी**

(1).पश्चिमी हिन्दी

इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसमें, पांच मुख्य बोलियां मिलती हैं।

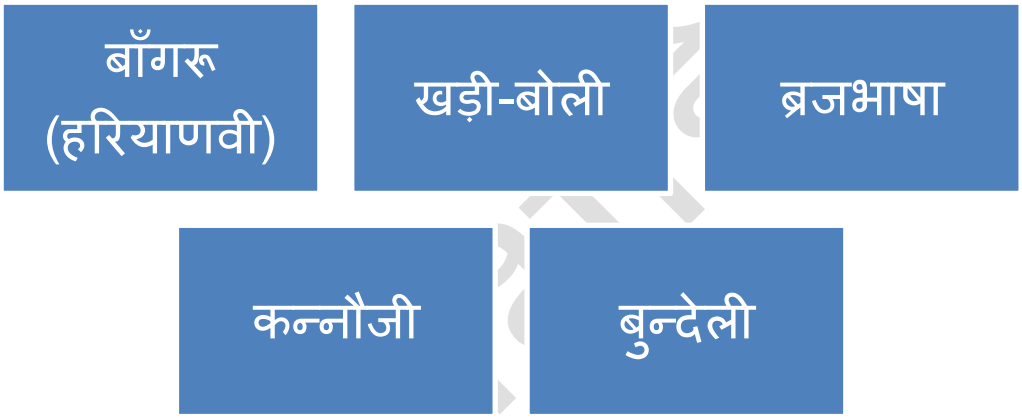

बांगरू : बांगरू नाम एक खेत्रा विशेष, जो ऊंची भूमि से सम्बन्धित हो उसे ''बांगर'' कहते हैं, के आधार पर हुआ है। इसे जाटँ, देसाड़ी और हरियाणवी नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। आजकल इसे प्राय: हरियाणवी ही कहते हैं। हरियाणा में इसी बोली का प्रयोग होता है। हरियाणा का उद्भव भी हिन्दी की इसी बोली हरियाणवी के आधार पर हुआ है। हरियाणा का सीमा-निर्धारण भी इसी बोली हरियाणवी के आधार पर हुआ है। इस बोली के उद्भव के विषय में माना जाता है कि खडी़-बोली पर पंजाबी तथा राजस्थान के प्रभाव के आधार पर यह रूप सामने आया है। इस बोली के लोक-साहित्य का समृद्ध भण्डार है। इस बोली की लिपि देवनागरी है। बाँगरू को मुख्य उप वर्गों में विभक्त कर सकते हैं-

यह केन्द्रीय बोली है। इसका केन्द्र रोहतक है। इस बोली का प्रयोग दिल्ली के निकट तक होता है। इसमें क्रिया ''है'' का ''सै'' के रूप में प्रयोग होता है। णकार बहुला बोली होने के कारण ''न'' ध्वनि प्राय: ''ण'' के रूप में प्रयुक्त होती है। श, ''ज्ञ, स का स्थान ''स'' ध्वनि ने ले लिया है।

खड़ी-बोली : इस बोली का प्रयोग दिल्ली और पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के कुछ जिलों में होता है। इसके दो रूप हैं-एक साहित्यिक हिन्दी, दूसरा उसी क्षेत्र की लोक-बोली। ''खड़ी-बोली'' के नाम के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों का कहना है कि इसके खड़ेपन (खरेपन) अर्थात् शुद्धता के कारण इसे ''खड़ी-बोली'' कहते हैं, तो कुछ विद्वानों का कहना है कि खड़ी पाई के बहुल प्रयोग (आना, जाना, खाना आदि) के कारण इसे खड़ी-बोली की संज्ञा दी जाती है। इसका क्षेत्र दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून, बिजनौर, मुरादाबाद तथा रामपुर के अतिरिक्त इनके समीपस्थ जनपदों के आंशिक भागों तक फैला हुआ है। खड़ी-बोली में साहित्य की दो शैलियाँ हैं-

पहली उर्दू प्रभावित, दूसरी तत्सम शब्दावली बहुला परिनिष्ठित शैली। भारत की राजभाषा, राष्ट्र-भाषा में भी इसी रूप को अपनाया गया है। वर्तमान समय में हिन्दी की साहित्यिक रचना मुख्यत: इसी में हो रही है।

ब्रज-भाषा : ब्रज क्षेत्र विशेष में बोली जाने वाली बोली को ब्रज-भाषा कहते हैं। ब्रज-भाषा मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर, मैनपुरी आदि जनपदों में बोली जाती है। हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में ब्रजभाषा को साहित्य रचना का मुख्य आधार बनाया गया इसमें रचना करने वाले मुख्य साहित्यकार हैं-सूरदास, नन्ददास, बिहारी, केशव तथा घनानन्द आदि। यह भाषा माधुर्य गुण सम्पन्नता के लिए प्रसिद्ध है।

कन्नौजी : यह कन्नौज विशेष क्षेत्र की बोली है, जिसका प्रयोग इटावा, फरुखाबाद, शाहजहाँपुर, हरदोई तथा कानपुर आदि जनपदों में होता है। कन्नौजी में लोक-साहित्य मिलता है, किन्तु साहित्यिक रचना का अभाव है।

बुन्देली : बुन्देलखण्ड में बोली जाने के कारण इसे बुन्देली कहते हैं। इसका क्षेत्र झांसी, छतरपुर, ग्वालियर, जालौन, भोपाल, सागर आदि जनपदों तक फैला हुआ है। इसमें साहित्यिक रचना का अभाव है, किन्तु समृद्धशाली लोक साहित्य है।

(2.)राजस्थानी

यह राजस्थान क्षेत्र या प्रदेश की भाषा है। इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके अंतर्गत चार प्रमुख बोलियाँ आती हैं- मेवाती, जयपुरी, मारवाड़ी और मालवी।

मेवाती : मेव जाति के क्षेत्र मेवाती के नाम पर यह बोली मेवाती कहलाई है। यह अलवर के अतिरिक्त हरियाणा के गुड़गाँव जनपद के कुछ अंश में बोली जाती है। ब्रज-क्षेत्र से लगे होने के कारण इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। इसमें समृद्ध लोक-साहित्य मिलता है।

जयपुरी : यह राजस्थान के पूर्वी भाग जयपुर, कोटा तथा बूंदी आदि क्षेत्रों में बोली जाती है। इस क्षेत्र को ढँढाण कहने के आधार पर इसे ढुँढणी की भी संज्ञा दी जाती है। इसमें लोक-साहित्य मिलता है। इसमें दादू पंथियों का पर्याप्त साहित्य मिलता है।

मारवाड़ी : यह पश्चिमी राजस्थान के जोधपुर, अजमेर, जैसलमेर तथा बीकानेर आदि जनपदों में बोली जाती है। पुरानी मारवाड़ी को डिंगल कहते हैं। इसमें साहित्य तथा लोक-साहित्य दोनों ही रचा गया है। इसके प्रसिद्ध कवि हैं-नरपति नाल्ह और पृथ्वीराज। मध्यकाल में मीराबाई ने इसी भाषा में रचना की थी।

मालवी : राजस्थान के दक्षिणी पर्व में स्थित मालवा क्षेत्र के नाम पर इसे मालवी कहते हैं। इन्दौर, उज्जैन तथा रतलाम आदि जनपद इसके क्षेत्र में आते हैं। इसमें सीमित साहित्य तथा पर्याप्त लोक-साहित्य मिलता है। चन्द्र-सखी इसकी प्रसिद्ध कवयित्री है।

(3.)बिहारी

इसका विकास मागधी से हुआ है। बिहारी क्षेत्र या प्रदेश में विकाशित होने के कारण इसका नाम बिहारी रखा गया है। यह हिन्दी भाषा का ही रूप है। इसके अन्तर्गत भोजपँरी, मैथिली, मगही तीन प्रमुख बोलियाँ आती हैं।

भोजपूरी : जनपदीय क्षेत्र भोजपूर इसका मुख्य केन्द्र होने के कारण इसका यह नाम पड़ा है। यह बिहार तथा उत्तर-प्रदेश के सीमावर्ती जिलों भोजपुर, राँची, सारन, चम्पार, मिर्जापुर, जौनपुर, बलिय, गोरखपुर, बस्ती आदि में बोली जाती हैं। इसमें सीमित साहित्य, किन्तु समृद्ध लोकसाहित्य मिलता है।

मैथिली : जनपदीय क्षेत्र की भाषा होने के आधार पर इसे मैथिली नाम दिया गया है। इसके क्षेत्र में दरभंगा, सहर और मुजफ्फरपुर तथा भागलपुर जनपद आते हैं। इसमें पर्याप्त साहित्य मिलता है। इसे सम्पन्न भाषा मान सकते है। इस भाषा को लोक-साहित्य भी अपने सरस रूप के लिए प्रसिद्ध है। मैथिल कोकिल विद्यापति ने इसी भाषा में अपनी अधिकांश कृतियों का सृजन किया है।

मगही: ''मागधी'' से विकसित होकर मगही शब्द बना है। ''मगाध'' क्षेत्र की भाषा होने के आधार पर इसे मागधी या मगाही नाम दिया गया है। गया जनपद के अतिरिक्त पटना, भागलपुर, हजारीबाग तथा मुंगेर आदि जनपदांशों में भी यही बोली जाती है।

(4.)पूर्वी-हिन्दी

पूर्वी हिन्दी का विकास अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र के पूर्व में होने से इसी पूर्वी हिन्दी का नाम दिया गया है। इसकी कुछ विशेषताएं पश्चिमी हिन्दी से मिलती है, तो कुछ बिहारी वर्ग की भाषाओं से। इसे तीन बोलियों-अवधी, बघेली, और छत्तीसगढ़ में विभक्त करते हैं।

अवधी : यह पूर्वी हिन्दी की प्रमुख बोली है। अवध (अयोध्या) क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे अवधी कहते हैं। प्राचीन काल में अवध को ''कोशल'' भी कहा जाता था, इसलिए इसे कोसली भी कहते हैं। विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे तीन उपवर्गों में विभक्त करते हैं। इसके क्षेत्र इस प्रकार हैं-

पूर्वी अवधी : फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, मिर्जापुर गोंडा।

केन्द्रीय अवधी : रायबरेली, बाराबंकी।

पश्चिमी अवधी : लखनऊ, सीतापुर, उन्नाव, फतेहपुर, खीरीलखीमपुर। अवधी में

साहित्य तथा लोक-साहित्य की परम समृद्ध परम्परा है। ठेठ तथा साहित्यिक अवधी में उन्नत साहित्य की रचना हुई है। मुल्लादाउद, कुतुबन, मलिक मुहम्मद जायसी, तुलसीदास आदि अवधी के प्रमुख कवि हैं।

बघेली : बघेल खण्ड में बोली जाने के कारण इसे बघेली नाम दिया गया है। इसे बघेलखण्डी भी कहते हैं। इसका केन्द्र रीवाँ है। रीवाँ के आसपास शहडोल, सतना आदि में भी इसका प्रयोग होता है। इसमें लोक-साहित्य मिलता है।

छत्तीसगढ़ी : छत्तीसगढ़ी के नाम पर इसे छत्तीसगढ़ी कहते हैं। रायपुर, विलासपुर, खैरागढ़ तथा कांके आदि तक इसका क्षेत्र माना गया है। इसमें पर्याप्त लोक-साहित्य मिलता है।

5.पहाड़ी

इसका विकास 'खस' अपभ्रंश से हुआ है। इसका क्षेत्र हिमालय के निकटवर्ती भाग नेपाल से लेकर शिमला तक फैला है। कई बोलियों वाली इस भाषा को तीन उपवर्गों में विभक्त करते हैं –

पश्चिमी पहाड़ी : इसमें शिमला के आस-पास चम्बाली, कुल्लई आदि बोलियाँ आती हैं।

मध्य पहाड़ी : इसमें कुमायूं तथा गढ़वाल का भाग आता है। नैनीताल तथा अल्मोड़ा में बोली जाने वाली कुमायूनी तथा गढ़वाल, मंसूरी में बोली जाने वाली गढ़वाली बोलियाँ मुख्य हैं।

पूर्वी पहाड़ी : काठमाण्डू तथा नेपाल की घाटी में यह भाषा बोली जाती है। पहाड़ी बोलियों का समृद्ध लोक-साहित्य है। इसकी लिपि मुख्यत: देवनागरी है।

यूनिट-3
शब्द-समूह
भाषा विकास (परिवर्तन की दिशाएँ)
भाषा विकास (परिवर्तन) के कारण

हिन्दी शब्द समूह-

हिन्दी में शब्द रचना के तीन रूप मिलते हैं।

1. **रूढ**
2. **यौगिक,**
3. **योग रूढ़**

रूढ़ शब्द - रूढ़ शब्द उन्हें कहते हैं जिनकी व्युत्पति ज्ञात नहीं है और भाषा में व्यवहृत हो रहे हैं।

यौगिक शब्द- यौगिक शब्द उन्हें कहते हैं, जिनकी रचना धातुओं, मूल शब्दों और शब्दों में उपसर्ग और प्रत्यय जोड़कर की जाती है।

योग रूढ़ - योग रूढ़ दो पदों के या मूल शब्दों में समास करके बनाये गये शब्दों को कहा जाता है।

इस प्रकार शब्द रचना के तीन स्रोत हुए- 1, भाषा के मूल शब्द 2 उपसर्ग और प्रत्यय से रचित शब्द और सामासिक शब्द।

हिन्दी शब्द समूह के विविध चार स्रोत हैं-

1. **तत्सम,**
2. **तद्भव,**
3. **देशज,**
4. **विदेशी**

1.तत्सम शब्द- तत्सम शब्द उन्हें कहा जाता है, जो हिन्दी में उसी रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं. जिस रूप में अपनी मूल भाषा में प्रयुक्त होते थे। हिन्दी का विकास संस्कृत से हुआ है। अतः संस्कृत में जो शब्द प्रयुक्त होते थे, उनके हिन्दी प्रयोग को तत्सम कहा जाता है। इस प्रकार विकास यात्रा से अपरिवर्तित शब्दावली तत्सम है। **फल, जल, रात्रि आदि ऐसे ही शब्द हैं।** तत्सम शब्दों में भी बहुत से ऐसे शब्द हैं, जिनका रूप तो तत्सम है किन्तु हिन्दी ने अपने प्रकृति के रूप में उन्हें ग्रहण किया है जैसे- **चन्द्रमा, अप्सरा, मन आदि तत्सम शब्दों की एक प्रजाति** हिन्दी में ऐसे शब्दों की है, जिनका **स्वरूप संस्कृत के आधार पर निर्मित हुआ है किन्तु उनका प्रयोग संस्कृत में नहीं होता था।**

हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली उसी है परम्परा में आती है, जैसे- कुल सचिव, संगणक, अभियन्ता, लिपिक, प्राचार्य, अधिवक्ता, निदेशक, नगर निगम, सचिवालय आदि।

2.तद्भव शब्द- तद्भव शब्द उन्हें कहा जाता है, जो **मूल भाषा से कालक्रमानुसार परिवर्तित होते गए** और आज हिन्दी में साँचे में ढलकर प्रयुक्त हो रहे हैं। इनके मूल स्वरूप में तो परिवर्तन हुआ है परन्तु यह विकार इस सीमा तक नहीं आया है कि अपने मूल रूप से पहचाने न जा सके।

जैसे-काम (कर्म), सूरज (सूर्य) आग (अग्नि). तारा (तारक), मुँह (मुख), हाथ (हस्त). आँसू (अश्रु) ऐसे ही शब्द हैं। हिन्दी की तद्भव शब्दावली व्यापक है।

(3) देशज या देशी- डॉ० हरदेव बाहरी के अनुसार - "देशी शब्दों के अन्तर्गत उन शब्दों को लिया जाता है जिन्हें संस्कृत से सिद्ध या संदर्भित नहीं किया जा सकता। कुछ भाषा वैज्ञानिको ने देशी को अनार्य भाषाओं से उत्पन्न माना है। **जिनकी व्युत्पत्ति का किसी भाषा में कोई स्रोत नहीं मिलता।** यहाँ देशज और देशी शब्दों के माध्यम से भारतीय अनार्य भाषाओं एवं अनुकरणात्मक शब्दों को अलग-अलग रखा जा रहा है

(क) देशज हे हे, काँव-काँव, तडातड़, धक्का, टक्कर, झुमका, जगमग, फपकार चूँ-चूँ, खुसर-पुसर, भड़फर, अडोस, थपक, उनक, लचक आदि।

(ख) देशी शब्द- मुण्डाभाषा- गंडा, चूहा, केला, कीचड, जीमना, हल आदि।

4. विदेशी विदेशी शब्द का अर्थ है **"ऐसे शब्द जो विदेशी भाषाओं से हिन्दी में आये हो।** प्रारम्भ में तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक व्याकरण की अध्ययन परम्परा के अभाव के कारण विदेशी शब्दों का पता नहीं चल पाता था। इसीलिए प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं में आगत विदेशी शब्द उसी भाषा के बन जाया करते थे किन्तु आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के अध्ययन में तुलनात्मक भाषाविज्ञान के समावेश के कारण भाषा में आगत विदेशी शब्दावली का परिचय स्पष्टतया मिल जाता है। क्योंकि विदेशी शब्दों का संस्कृत में तत्सम रूप नहीं मिलता तथा उनका ऐतिहासिक स्वरूप उन शब्दों की मूल भाषा में मिल जाता है। **हिन्दी में विदेशी शब्दावली का प्रयोग 10वी- ग्यारहवी शती** से ही होने लगा था, क्योंकि इसी काल से विदेशी आक्रमणकारी भारत में आने लगे थे। प्रारम्भ में भारतीय भाषाओं पर मुस्लिम शासकों द्वारा प्रयुक्त भाषाओं के शब्दों का प्रभाव पड़ा। **अतः इसे म्लेच्छ शब्द भी कहा जाता है।** लगभग 1800 वर्षों के विदेशी शासनकाल में हिन्दी में विदेशी शब्दावली का प्रयोग बढ़ता गया और बहुत वे शब्द इस प्रकार प्रचलित हो गए जो हिन्दी के अपने प्रतीत होने लगे।

(1) फारसी - हिन्दी में फारसी के 2-3 हजार शब्द आए है। अरबी या तुर्की भाषाओं के शब्द भी इसी में समाहित हैं क्योंकि अरबी और तुर्की शब्द भी पहले फारसी में व्यवहृत हुए और उसी माध्यम से हिन्दी में आए। फारसी में हिन्दी में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट शब्द इस प्रकार है- **रोजा, कुरान, खुदा, फरिश्ता, पाजामा, कमीज, मोजा, दस्ताना, शलवार, सदरी, मुहल्ला, परगना, देहात, शहर, तहसील, जिला, कस्बा, लिफाफा, पता, बादाम, सेव, मेवा, अनार, अंगूर, मुनक्का, किशमिश, तरकारी, पुदीना, सब्जी, खरबूजा, तरबूज, कदद, बरफी, हलवा, जलेबी, समोसा, गुलाबजामुन, इत्र, सुर्मा, साबुन, हजामत, शीशा, कुर्सी, तख्त, दर्जी, रफूगर, सर्राफ, बावर्ची, हलवाई, मकान, बुनियाद, दीवार, दरवाजा, मन्जिल, हकीम, बुखार, बवासीर, जुकाम, दवा, मरीज बीमार आदि।**

(2) अरबी - अदालत, अमीन, हिरासत, हाकिम, दफा, मुकदमा, फैसला, हराम, ईद, शैतान, अर्क, जुलाब, लकवा, मवाद, किताब, इम्तहान, कलम, कागज आदि।

(3) तुर्की— उर्दू, तुर्क, बहादुर, कैची, कुली, चाकू, दरोगा, बेगम, लाश, बीबी, बाबा, चेचक, सुराग, बारूद, कुर्ता खच्चकर, सराय, गनीमत, मुगल

(4) पश्तो– पश्तो अफगानिस्तान की भाषा है तथा यह भारत ईरानी उप-परिवार से विकसित हुई है। भारत में अफगानों का भी शासन रहा है तथा उनका भारत से व्यवहारिक सम्बन्ध भी रहा है। अतः उनकी शब्दावली का प्रयोग भी हिन्दी में हुआ है। यद्यपि ऐसे शब्द कम हैं पर कुछ उल्लेखनीय शब्द इस प्रकार है- पठान, रुहेला, मटरगश्ती, गुण्डा, अचार,खर्राटा, अखरोट, चखचख, पटाखा, डेरा, कलूटा, गड़बड़, लुचा, नगाडा, हमजोली आदि।

(5) पुर्तगाली - भारत में पुर्तगाली बहुत पहले आए थे। चास्कोडिगामा कालीकट में ही आया था तथा पुर्तगालियों का प्रभाव दक्षिण तक ही सीमित रहा। लेकिन उनकी भाषा के कुछ शब्द हिन्दी में भी यायावाट बनकर आ गए। हिन्दी से पुर्तगाली शब्दों की संख्या 1000 से अधिक नहीं है। पुर्तगाली के हिन्दी में व्यवहृत कुछ शब्द इस प्रकार हैं- आलमारी, आलपिन, स्त्री, आया, इस्पात, कनस्तर, कमर, कर्नल, गोभी, गोदाम, चाबी, चाय, काफी, काजू, कप्तान, गमला, तम्बाकू, तौलिया, पपीता, परात, पावरोटी, पादरी पिस्तौल, बम्बा, बाल्टी, बिस्कुट, बोतल, सन्तरा आदि।

(6) फ्रेंच- कारतूस, अंग्रेजी, कूपन।

(7) डच- तुरूप, बम

(8) स्पेनी - कार्क, सिगार, सिगरेट।

(9) जर्मन - ट्रेन, बैगन, सेमिनार।

(10) जापानी - रिक्शा।

(11) अंग्रेजी - भारतीय उपनिवेश के रूप दे ब्रिटिश राज्य का लगभग 200 वर्षों तक आधिपत्य रहा और इस शासन काल में अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा, राजनीति, शासन और संस्कृति को प्रभावित किया। अंग्रेजी निरन्तर राजकार्य की भाषा बनी रही तथा शिक्षा माध्यम के रूप में भी अंग्रेजी का वर्चस्व बना रहा। अंग्रेजी शासन काल में विदेशी वस्तुएँ भी भारत में आयी तथा विदेशी ज्ञान-विज्ञान का चमत्कार भारत के आकर्षण का केन्द्र बना। इसलिए अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी में जीवन के हर क्षेत्र में व्यवहृत शब्दावली पर प्रभाव पड़ा और उनका प्रयोग

हिन्दी में बहुलता से हो रहा है। हिन्दी में लगभग 3000 अंग्रेजी शब्द घुल-मिल गए हैं तथा प्रायः सभी वर्ग में बोले जा रहे हैं। जैसे टिन, सिल्वर, इंजन, मोटर, कैमरा, रेडियो, मशीन, मीटर, बस, लारी, टैक्सी, स्कूटर, साइकिल, ट्रक, टेम्पो, अस्पताल, डॉक्टर, मलेरिया, स्कूल, कॉलिज, मास्टर, होस्टल, फीस, पेट, कोट, बुश्शर्ट, सूट, टाई, लट्ठा, कॉलर, पाकिट, कोर्ट, इन्सपेक्टर, कलक्टर, वारंट, जज, गजट, अफसर, समन, रपट, अपील, डिग्री, प्रेस, टाइप, डिमाई फार्म, टीम, कम्पनी, मेजर, परेड, लेमन, डबलरोटी, सोडा, सीनरी, फोटो, क्रीम, पाउडर, सेंट, गैलरी, हाल, स्टेशन, लालटेन, फैशन आदि । इसके अतिरिक्त दिन महीनों के नाम, सरकारी कार्यालयों में व्यवहृत शब्द पोस्ट आफिस के शब्द, खेलों के नाम, प्रसाधन सामग्री आदि के अधिकांश शब्द अंग्रेजी में लिए गये हैं।

इस प्रकार हिन्दी भाषा पर विदेशी शब्दावली का व्यापक रूप से प्रयोग हुआ है किन्तु 'है' उनमें फारसी और अंग्रेजी का ही प्रयोगाधिक्य रहा है क्योंकि ये दोनों भाषाएँ शासकों की भाषा के रूप में भारत आयी थी।

भाषा परिवर्तन दिशाएँ-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर परस्पर विचार-विनिमय करना: चाहता है। जिसके लिए वह भाषा का सहारा लेता है। अत: भाषा उसकी आत्माभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। भाषा जहाँ मनुष्य की अर्जित सम्पत्ति है यहीं सामाजिक सम्पत्ति भी है। भाषा उस नदी की भाँति है जो सतत् प्रवाहमान है। इसीलिए परिवर्तनशीलता भाषा का प्रमुख गुण है। भाषा के परिवर्तन में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य और अर्थ का विशेष महत्व है, इन्हें भाषा के परिवर्तन की दिशाओं का आधार कहा जा सकता है। इनके आधार पर भाषा परिवर्तन की निम्नलिखित दिशाएँ मानी जा सकती हैं-

(1) स्वन परिवर्तन-

उच्चारण अवयवों से निकलने वाली ध्वनियों के समूह को भाषा के स्वरूप की संरचना इन्हीं **ध्वनि** प्रतीकों से होती है। इन ध्वनि-प्रतीकों के परिवर्तन से भाषा में भी परिवर्तन होता है। कभी-कभी यह स्वन परिवर्तन बड़ा विचित्र होता है। भाषा में यह स्वन परिवर्तन कई रूपों में दिखाई पड़ता है। कभी यह स्वरों में होता है और कभी व्यञ्जनों में। स्वरों में भी आदि स्वर, मध्य स्वर, अन्त स्वर और इसी प्रकार आदि व्यञ्जन, मध्य व्यञ्जन, अन्त व्यञ्जन का परिवर्तन होता है। **जैसे 'अनाज' का 'नाज', 'खुरजा' का 'खुर्जा', 'दूर्वा' का 'दूब' आदि स्वर परिवर्तन के तथा 'स्थान' का 'थान', 'सूची' का 'सुई' और 'निम्ब' का नीम आदिव्यञ्जन परिवर्तन के उदाहरण है। 'लखनऊ' को 'नखलक', 'धर्म', 'सिगनल' को 'सिंगल', "स्टेशन को टेसन' आदि** के रूप में उधारण करना इसी ध्यनि परिवर्तन के उदाहरण है।

(2) शब्द परिवर्तन

शब्द परिवर्तन कई ध्वनियों के समूह से शब्द रचना होती है जिस प्रकार ध्वनि के परिवर्तन से भाषा में परिवर्तन होते हैं उसी प्रकार शब्दों के परिवर्तन से भाषा में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन विविध रूपों में होता है। **उदाहरण के लिए 'धर्म', 'कर्म', 'मातृ', 'पितृ' आदि संस्कृत के शब्द धीरे-धीरे परिवर्तित होते हुए क्रमशः ग्राम, काम, माता, पिता हो गये।** बहुत से शब्दों में तो विचित्र परिवर्तन हुए जैसे 'उपाध्याय, "बलीवर्ध', 'भातृ जाया क्रमशः परिवर्तित होते हुए 'झा', 'बैल', 'भीजी' के रूप में प्रयुक्त होने लगे। इस प्रकार शब्द परिवर्तन से भी भाषा में परिवर्तन हो जाता है।

(3) पद परिवर्तन

जिस प्रकार ध्वनियों के समूह से शब्द रचना होती है उसी प्रकार **शब्दों में उपसर्ग, प्रत्यय परसर्ग आदि लगाकर पद बनाया जाता** है। एक वाक्य की रचना पदों से होती है। जैसे 'अलका', 'नीलम', 'पुस्तक', 'देना' ये चार शब्द है। इन शब्दों को अब तक पदो में परिवर्तित नहीं किया जायेगा तब तक पूर्ण वाक्य की रचना नहीं हो सकती इन शब्दों को जब क्रमशः 'अलका ने नीलम को पुस्तक 'दिया' पदों में परिवर्तन करने पर ही पूर्ण वाक्य इस प्रकार बना **"अलका ने नीलम को पुस्तक दिया।** इसमें अलका शब्द के साथ ने परसर्ग जुड़ने पर अलका ने कर्ता पद बना 'नीलम' शब्द में 'को' पद बना। इसी प्रकार पुस्तक शब्द में भी कर्म कारक का चिह्न को छिपा हुआ है और दिना' क्रिया में आ प्रत्यय लगने पर दिया' क्रिया पद बना पद निर्माण की यह पद्धति हिन्दी की पूर्ववर्ती भाषाओं में भी थी। संस्कृत भाषा से चलती हुई प्राकृतिक अपभ्रंश आदि से होती हुई हिन्दी भाषा तक पद निर्माण की यह प्रवृत्ति विभिन्न रूप लिये हुए है। इस प्रकार पद-रचना में होने वाले परिवर्तनों से भाषा परिवर्तन की दिशा स्पष्ट होती है।

(4) अर्थ परिवर्तन

अर्थ में होने वाले परिवर्तनों से भी भाषा परिवर्तन की दिशा का ज्ञान होता है। यह अर्थ परिवर्तन तीन रूपों में देखा जा सकता है जैसे **अर्थ विस्तार, अर्थसंकोच और अर्थादेश आदि।** जब किसी शब्द का अर्थ अपने सीमित क्षेत्र से निकल कर व्यापक हो जाता है तब उसे अर्थ विस्तार कहते हैं। जैसे **'स्याह' का अर्थ काला है और पहले चूँकि लोग काले रंग से लिखते थे इसलिये उसे स्याही' कहा जाता था। पर अब लाल, नीली, हरी आदि सभी रंग की रोशनाइयों को स्याही कहा जाता है।** इसी प्रकार 'अधर का पहले अर्थ था नीचे का ओठ पर अब दोनों होठों को 'अघर' कहते हैं। इसी प्रकार शब्द का वास्तविक अर्थ सीमित हो जाता है तब उसे अर्थ संकोच कहते हैं प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक बील के अनुसार जो राष्ट्र या जाति जितनी अधिक विकसित होगी। उसमें अर्थ संकोच के उदाहरण उतने अधिक होंगे। उदाहरण के लिए संस्कृत में 'मृग' तथा अंग्रेजी के 'Deer' शब्द का प्रयोग 'हिरण' के लिए होता है। इसी प्रकार 'मुर्ग' शब्द का अर्थ पक्षी है परन्तु उर्दू और हिन्दी में यह शब्द एक विशेष पक्षी के लिए प्रयुक्त होता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि भाव की समानता के कारण किसी शब्द के प्रधान अर्थ के साथ-साथ गौण अर्थ भी चलने लगता है। कुछ दिनों में ऐसा होता है कि प्रधान अर्थ

लुप्त हो जाता है और गौण अर्थ में शब्द का प्रयोग होने लगता है। जैसे 'वर' शब्द का अर्थ 'श्रेष्ठ'या पर अब इसका प्रयोग दुलहै के अर्थ में होता है। इसी प्रकार अर्थ अपकर्ष और उत्कर्ष के द्वारा भी भाषा में परिवर्तन होता है।

(5) वाक्य परिवर्तन

कई पूर्ण वाक्यों को मिलाकर भाषा बनती है। अतः वाक्यों की रचना से भी भाषा परिवर्तन की दिशा का बोध होता है। व्यवस्थित पदों के समूह से वाक्य बनता है। संस्कृत भाषा में वाक्य रचना इतनी स्पष्ट और व्यवस्थित थी कि उसमें प्रयुक्त होने वाले पदों को किसी भी स्थान पर रख देने से वाक्य के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता था जैसे अहम पुस्तक पठामि वाक्य को पठामि पुस्तकम् अहम् रूप में भी लिखा जा सकता है। संस्कृत के बाद प्राकृत आदि मध्यकालीन आर्य भाषाओं में भी विभक्तियों और प्रत्ययों का योग होने के कारण वाक्य रचना की यही स्थिति थी। परन्तु हिन्दी जैसी आधुनिक आर्य भाषा में वाक्य में यदि कोई भी पद इधर से उधर हो जाये तो अर्थ बदल जाता है। जैसे राम ने रावण को मारा वाक्य में राम और रावण पदों में स्थान परिवर्तन हो जाए तो अर्थ का अनर्थ हो जायेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा परिवर्तन की उपर्युक्त दिशाओं का भाषा के विकास में विशेष महत्त्व है।

भाषा विकास परिवर्तन के कारण

यह संसार परिवर्तनशील है। परिवर्तनशीलता प्रकृति की एक प्रमुख प्रवृत्ति है इसीलिए कहा भी गया है 'Change is the Law of Nature.' मनुष्यों के द्वारा परस्पर-विनिमय के लिए प्रयुक्त भाषा भी इस परिवर्तन से बची नहीं है। यह परिवर्तन भाषा का विकास है। भाषा के इस विकास अथवा परिवर्तन के दो प्रमुख कारण हैं

(अ) आभ्यंतर

(ब) बाह्य

(अ) आभ्यंतर

इनका सम्बन्ध भाषा के प्रयोगकर्त्ता की शारीरिक और मानसिक योग्यता आदि से होता है। दूसरे कारण में वे तत्व आ जाते हैं जो भाषा को बाहर से प्रभावित करते हैं। आभ्यंतर कारण इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित कारण आते हैं-

(1) प्रयत्नलाघव
(2) अधिक प्रयोग
(3) बलांघात
(4) अपूर्ण अनुकरण
(5) मानसिक योग्यता
(6) बलात परिवर्तन
(7) भावावेश
(8) सादृश्य
(9) असावधानी

(1) प्रयत्न लाघव- कठिनता से सरलता की ओर जाना मानव की स्वाभाविक वृत्ति है, सरलता की यह प्रवृत्ति उसके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखी जा सकती है। जब वह किसी स्थान के लिये चलता है तो छोटा रास्ता (Short Cut) ढूँढना चाहता है। यही प्रवृत्ति उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा में भी दिखलाई पड़ती है जिसे प्रयत्न लाघव अथवा मुख-सुख कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य शब्दों का उच्चारण करते समय सरलता के साथ शीघ्रता चाहता है। प्रयत्नलाघव की इस प्रवृत्ति के कारण शब्द का उच्चारण करते समय उसका रूप बदल जाता है। **उदाहरण के लिये मॉस्टर साहब, पण्डित जी, कृष्णचन्द्र आदि मास्साहन, पंडितजी, किशनचन्दर हो जाते हैं**। इसी प्रकार कब ही, अब ही, अब जैसे शब्द इसी प्रवृत्ति के कारण कभी अभी अभी जैसे शब्द बन गये और हिन्दी भाषा में तेजी से प्रयुक्त भी होने लगे। खान का अखान, स्कूल का इस्कूल, स्कन्दगुप्त का अश्कन्त्रगुप्त स्तर का अस्तर बोला जाना इसी प्रयत्न- लाघव का परिणाम है।

(2) अधिक प्रयोग शब्दों की एक लम्बी परम्परा होती है। दीर्घ काल से शब्द प्रयोग प्रवाह में बहता हुआ आगे बढ़ता जाता है। प्रयोग की इसी अधिकता के कारण शब्द घिसते जाते हैं और धीरे-धीरे लुप्त भी हो जाते हैं। उदाहरण के लिये संस्कृत भाषा की कारकीय विभक्तियां धीरे-धीरे घिसते घिसते समाप्त हो गई जिसके फलस्वरूप हिन्दी भाषा में परसंगों की आवश्यकता पड़ी। परिवर्तन का यह कारण भाषा में स्वाभाविक विकास ला देता है।

(3) बलाघात भाषा के परिवर्तन का बलाघात भी एक मुख्य कारण है, बलाघात का "तात्पर्य है किसी अकेले व्यञ्जन, शब्दांश या शब्द पर बोलते समय बल डालना इसी प्रकार स्वर पर बल पड़ने में स्वराघात होता है। इस स्वराघात और बलाघात से प्रायः स्वर या व्यञ्जन या पूर्ण वर्ण ही गायब हो जाता है, फलस्वरूप शब्द का रूप बदल जाने से भाषा में एक विचित्र परिवर्तन आ जाता है। **उदाहरण के लिये निम्ब का नीम रह जाना (बिल्ब' का बेल हो**

जाना तथा "अभ्यंतर का भीतर रूप ले लेना इसी बलाघात के परिणाम हैं। कभी-कभी तो बलाघात इतना प्रबल होता है कि एक बड़ा शब्द घिसते घिसते बहुत छोटा शब्द रह जाता है। उपाध्याय शब्द का "झा हो जाना इसका एक स्पष्ट उहाहरण है? भाषा परिवर्तन का यह कारण अन्य भाषाओं में भी • मिलता है। उदाहरण के लिये अंग्रेजी भाषा का शब्द History ले सकते हैं इस शब्द में 's' वर्ण पर 2 बलाघात होने से के बाद आने वाला स्वर • निर्बल हो गया, फलस्वरूप इस शब्द का उच्चारण "हिस्टोरी' न होकर हिस्ट्री' हो गया, जबकि 'Historian' शब्द में स्वर 'o' का उच्चारण स्पष्ट है, इस प्रकार बलाघात से भाषा में काफी परिवर्तन हो जाता है।

(4) अपूर्ण अनुकरण भाषा की प्रवृत्तियों का विवेचन करते समय यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मनुष्य भाषा को अनुकरण से सीखता है। परन्तु यह अनुकरण हर समय पूर्ण ही होता हो, ऐसा नहीं है। कभी-कभी यह अनुकरण अपूर्ण भी रहता है. इस अपूर्णता के कई कारण हैं, जिनमें अज्ञान, अशिक्षा अथवा श्रवण यन्त्र या वाग्यन्त्र की भिन्नता भी है। इस मित्रता के कारण वह किसी दूसरे व्यक्ति के उच्चारण अंगों से उच्चरित ध्वनियों का ठीक-ठीक अनुकरण नहीं कर पाता है फलस्वरूप उस सुनी हुई ध्वनि को वह अपने शब्दों में बोलता है। उदाहरण के लिए अशिक्षित लोगों के अंग्रेजी भाषा के अज्ञान के कारण, उनके द्वारा प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दों का रूप विचित्र हो जाता है, 'सिगनल' का 'सिंगल', 'डाउन' का 'डॉन' 'टिकट' का 'टिकस' या टिकट' 'लाइब्रेरी' को 'रायबरेली', 'रिपोर्ट' का रपट आदि उच्चारण इसी अपूर्ण अनुकरण के परिणाम हैं।

(5) मानसिक योग्यता जिस प्रकार मनुष्यों के विभिन्न सामाजिक स्तर होते हैं उसी प्रकार उनके विभिन्न मानसिक स्तर भी होते हैं मनुष्यों के इस मानसिक स्तर की भिन्नता का प्रभाव उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों पर भी पड़ता है। फलस्वरूप भाषा में परिवर्तन हो जाता है। भाषा का यह परिवर्तन विशेष रूप से शब्दों के अर्थ में देखने को मिलता है। 'टकर' नामक भाषा वैज्ञानिक ने शब्दों के सम्बन्ध में यह ठीक कहा है कि शब्द एक प्रकार का सिक्का है जिसका मूल्य निश्चित नहीं है, सुनने वालों की मानसिक योग्यता के अनुसार उसका अर्थ घटता-बढ़ता रहता है उदाहरण के लिये ब्रह्म शब्द का अर्थ एक दार्शनिक के लिये तथा एक सामान्य मनुष्य के लिये अलग-अलग है। इस प्रकार भाषा के प्रयोगकर्त्ताओं की मानसिक योग्यता का प्रभाव उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा में परिवर्तन ला देता है।

(6) बलात् परिवर्तन कभी-कभी भाषा के प्रयोगकर्त्ता भाषा में जान-बूझ कर भी परिवर्तन कर देते हैं। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से उस भाषा के लेखक आदि वर्ग में पाई जाती है इसका कारण यह है कि कभी तो वे शब्दों का नया प्रयोग करके उसे एक विलक्षण रूप देना चाहते हैं और कभी ज्ञान प्रदर्शन की लालसा से भी वे शब्दों में परिवर्तन कर देते हैं। वस्तुतः यह परिवर्तन भाषा का स्वाभाविक परिवर्तन नहीं कहा जा सकता इसीलिए भाषा परिवर्तन के इस कारण का नामकरण बलात् परिवर्तन किया गया है। हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार प्रसाद के द्वारा 'अलेकजेंडर' का अलक्षेन्द्र कर देना इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। कभी-कभी एक भाषा के किसी शब्द विशेष के लिये दूसरी भाषा में उपयुक्त शब्द न मिलने पर जान-बूझ कर किसी मिलते-जुलते शब्द का प्रयोग कर देते हैं। यह प्रयोग नये अर्थ में प्रचलित हो ही जाता है। उदाहरण के लिये अंग्रेजी के 'ट्रेजडी' और 'कमेडी' का हिन्दी में क्रमशः 'त्रासदी' और 'कामदी' जैसे शब्द, परिवर्तन के इसी कारण का परिणाम है। इसी प्रकार नये शब्दों के निर्माण की प्रवृत्ति भी बलात् परिवर्तन के अन्तर्गत आ जाती है। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप शब्दों के नये-नये रूपों का निर्माण होता जाता है और भाषा के प्रयोग-प्रवाह में आकर वे प्रचलित होते जाते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी में स्वीकारना, बतियाना, नकारना जैसे क्रिया रूप इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं।।

(7) भावावेश- विचारशील होने के साथ-साथ मनुष्य भावुक भी होता है। यही कारण है कि विशेष परिस्थितियों में वह भावावेश में आ जाता है। भावावेश की यह स्थिति उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा पर भी प्रभाव डालती है और उसमें परिवर्तन ला देती है। इसी भावावेश के कई कारण हैं। इनमें प्रेम, घृणा, क्रोध, दुःख आदि भावों की अधिकता प्रमुख है। इनमें से किसी एक भाव की अधिकता होने पर मनुष्य भावावेश की स्थिति में आ जाता है और उस समय वह एक विचित्र ढंग से शब्दों का उच्चारण करता है। धीरे-धीरे विचित्र ढंग से उच्चरित यही शब्द भाषा में प्रयुक्त भी होने लगते हैं। उदाहरण के लिये प्रेम या दुलार के भावाधिक्य में मनुष्य बच्चों को बचुआ, बेटा को बेटवा बेटी को बिटिया या बिट्टो, कृष्ण को किसनवा आदि प्रयोग करने लगता है। इसी प्रकार क्रोध के भावाधिक्य में भी वह शब्दों को बिगाड़कर प्रयोग करता है। उदाहरण के लिये 'रामेश्वर' को रमेसरा, चमार को चमरवा या 'चमरा' जैसे प्रयोग इसी भावावेश की स्थिति का परिणाम है। इस प्रकार भाषा-परिवर्तन में भावावेश का भी प्रमुख स्थान है। (8) सादृश्य सादृश्य भी भाषा परिवर्तन का एक प्रमुख कारण है। शब्दों का प्रयोग करते समय कभी-कभी मनुष्य किसी शब्द के प्रयोग विशेष को देखकर सादृश्य पर दूसरे शब्दों का निर्माण कर लेता है। इस प्रकार के गठे हुए शब्दों से भाषा में परिवर्तन हो जाता है। कभी-कभी यह परिवर्तन बहुत त्रुटिपूर्ण होता है। उसका कारण यह है कि एक शब्द के सादृश्य पर दूसरे शब्द का निर्माण करते समय मनुष्य शब्द प्रयोग के मूल आधार का पता लगाने की चेष्टा नहीं करता है। हिन्दी के 'सृष्टा' जैसे शब्द इसी सादृश्य का परिणाम है वस्तुतः शुद्ध शब्द है। स्रष्टा। परन्तु सृष्टि शब्द के सादृश्य पर 'सृष्टा' शब्द का निर्माण कर लिया। गया है। इसी प्रकार दृष्टा शब्द का निर्माण भी हुआ है जो 'दृष्टि' शब्द के सादृश्य पर गढ़ा गया है। जबकि सही शब्द है 'द्रा अंग्रेजी भाषा में भी कतिपय शब्दों के निर्माण के पीछे यही कारण है, उदाहरण के लिए Shall का Should will का would रूप जैना सकारण है क्योंकि Shall और will जैसे शब्दों में तो वर्ण है परन्तु Can शब्द में वर्णन होने पर भी उससे could शब्द बनना इसी सादृश्य का परिणाम है।

(७) असावधानी मनुष्य के स्वभाव में असावधान भी पाई जाती है। जहाँ इस असावधानी का प्रभाव उसके जीवन के अन्य क्षेत्रों में देखा जाता है वहीं भाषा में भी इसका प्रभाव पड़ता है। जैसे 'मतलब' का भूतबल ,अमरूद का अरमूह, लखनऊ का नखलक, शाप का श्राप, नरक का नर्क, सौन्दर्य का

सौन्दर्यता जैसे प्रयोग इस असावधानी के परिणाम है। प्रयोग-प्रवाह में आ जाने पर धीरे-धीरे यही विकृत शब्द भाषा में स्थान पाने लगते हैं। इस प्रकार असावधानी का यह कारण भाषा-परिवर्तन उपस्थित कर देता है।

(ब) बाह्य कारण

जिस प्रकार उपर्युक्त आन्तरिक कारणों से भाषा में परिवर्तन होता है उसी प्रकार कुछ वाह्य कारण भी हैं जो भाषा परिवर्तन ला देते हैं। इन कारणों का सम्बन्ध मनुष्य की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि स्थितियों से है। सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज में घटित होते प्रत्येक परिवर्तन का उसके जीवन पर प्रभाव पड़ा है, फिर यह प्रभाव चाहे भौगोलिक हो, चाहे वैज्ञानिक हो अथवा धार्मिक हो आर्थिक हो। यही कारण मनुष्यों द्वारा विचाराभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त भाषा को भी प्रभावित करते हैं और उसमें परिवर्तन कर देते हैं। भाषा परिवर्तन के इन बाह्य कारणों को हम इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं—

(1) व्यक्तिगत कारण
(2) सामाजिक कारण
(3) धार्मिक कारण
(4) राजनीतिक कारण
(5) आर्थिक कारण
(6) सांस्कृतिक कारण
(7) भौगोलिक कारण
(8) वैज्ञानिक कारण

(1) व्यक्तिगत कारण व्यक्ति समाज की एक इकाई है। इस इकाई रूप में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। यह मित्रता जहाँ बाह्य रूप-आकार से सम्बन्धित होती है वहीं भाषा के क्षेत्र में भी यह मित्रता देखने को मिलती है। एक भाषा का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों के उच्चारणों में भेद हो सकता है। उच्चारण की इस व्यक्तिगत विशेषता के कारण उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों के उच्चारण में भी अन्तर होता है। हिन्दी भाषा का प्रयोग करने वाले अनेक व्यक्तियों के द्वारा 'स' ध्वनि का "श" तथा 'श' ध्वनि का 'स' उच्चारण करते देखा गया है। इसी प्रकार 'स् का 'स' बोलने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है, फलस्वरूप 'स्तर' का 'अस्तर' 'खान' का अखान जैसे उच्चारण देखने को मिलते हैं। व्यक्तिगत कारण के द्वारा उत्पन्न भाषा का परिवर्तन धीरे-धीरे प्रयोग प्रवाह में आ जाता है और मान्य हो जाता है।

(2) सामाजिक कारण पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि मनुष्य एक सामाजिक है प्राणी है और उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा एक सामाजिक सम्पत्ति है। इस प्रकार मनुष्य का जहाँ समाज से घनिष्ट सम्बन्ध है वहीं उसकी भाषा भी समाज से अभिन्न रूप से जुड़ी रहती है। भाषा का प्रवाह एक नदी की भाँति है। यह अपने सम्पर्क में जो भी भाषा आती है उससे कुछ न कुछ ग्रहण करते रहते हैं। जब एक भाषा विशेष का प्रयोग करने वाले समाज को लोग दूसरी भाषा का प्रयोग करने वाले समाज के सम्पर्क में आते हैं तो वे उसकी भाषा पर प्रभावभाषा

डालते है। एक भाषा के सम्पर्क प्रभाव से दूसरी भाषा का यह परिवर्तन प्राचीनकाल से होता चला आ रहा है। उदाहरण के लिए 'आभार समाज के लोगों का सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रसार होने से प्राकृत भाषा के विभिन्न रूपों का प्रचार और प्रसार हुआ। मागधी, पैशाची, महाराष्ट्री आदि प्राकृतों का उत्तर-भारत में इसी समय विकास हुआ। इसी प्रकार अरबी, फारसी, अँग्रेजी आदि भाषा-भाषियों का जब हिन्दी भाषी समाज से सम्पर्क हुआ तो उन भाषाओं के बहुत से शब्दों को हिन्दी भाषा ने ग्रहण किया। फकीर, गरीब, मजदूर, फलाना, कोट, पैन्ट, मम्मी, पापा, रेल टिकट डाक्टर आदि हिन्दी भाषा में प्रयुक्त अनेक शब्द भाषा-परिवर्तन के इसी सामाजिक कारण की ओर संकेत करते हैं।

(3) धार्मिक कारण व्यक्तिगत और सामाजिक कारणों की तरह धर्म भी भाषा में परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। जब एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्मानुयायियों के सम्पर्क में आते हैं तब उन दोनों में परस्पर एक दूसरे के धार्मिक विचारों का आदान-प्रदान तो होता ही है साथ में वे एक दूसरे के धार्मिक शब्दों का भी प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार एक भाषा के द्वारा दूसरे भाषा-भाषियों के धार्मिक शब्दों को अपनाने के कारण उसमें परिवर्तन आ जाता है। उदाहरण के लिये जब वैदिक धर्म को मानने वाले आर्यों का सम्पर्क यूनानियों से हुआ तो यूनान देश के लोगों ने वैदिक देवी-देवताओं के नाम ग्रहण किये। इन नामों का प्रयोग यूनानी भाषा में हुआ तब उसमें काफी परिवर्तन हो गया। 'देव' को 'थेओस, 'असुरमेघस' 'अहुरमज्द' कहा जाने लगा। इसी प्रकार संस्कृत के शब्दों को जब अवेस्ता भाषा ने ग्रहण किया तब उन शब्दों में भी परिवर्तन हुआ। उदाहरण के लिए 'असुर का 'अहुर, सोम' का 'होम', 'सिन्धु' का हिन्दू जैसे परिवर्तन लिये जा सकते हैं। भारत में भी इसी प्रकार जब हिन्दी भाषा इस्लाम, ईसाई धर्म के प्रचारकों के सम्पर्क में आई तो अरबी, फारसी, पुर्तगाली, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि भाषाओं के धार्मिक शब्दों को ग्रहण किया। 'अल्लाह', 'मस्जिद', 'गरजा', 'वपतिस्मा' जैसे भाषा परिवर्तन के इस धार्मिक कारण के उदाहरण है।

(4) राजनीतिक कारण समाज में रहता हुआ मनुष्य उसमें घटित होने वाली हर एक घटना से प्रभावित होता है। इन घटनाओं के घटित होने के कई कारण है। इनमें राजनीति का प्रमुख स्थान है। राजनीति के कारण शासन समाज आदि में ही परिवर्तन नहीं होते हैं अपितु भाषा में भी परिवर्तन हो जाते हैं। प्राय: यह देखा गया है कि जब आक्रमणकारी किसी स्थान विशेष पर आक्रमण करता है तो उस स्थान विशेष की सामाजिक स्थिति को प्रभावितः करने के साथ-

साथ उस स्थान की भाषा को भी प्रभावित करता है। सामान्यतः विजित की भाषा विजेता की भाषा से प्रभावित होने लगती है और विजेता की भाषा के शब्दों को ग्रहण करने के कारण विजित की भाषा में परिवर्तन होने लगता है। परन्तु शब्दों का यह आदान-प्रदान एकांगी नहीं होता है, विजितों की भाषा भी विजेताओं की भाषा को प्रभावित करती है परन्तु प्रमुख प्रभाव विजेता की भाषा का ही पड़ता है। उदाहरण के लिये भारत में संस्कृत भाषा के प्रचार एवं प्रसार के समय जब हुण आदि जातियों का भारत में आगमन हुआ और यहाँ की राज्य-सत्ता इनके हाथों में आई तो संस्कृत के शब्दों में परिवर्तन होने लगा। उदाहरण के लिए धर्म', 'कर्म', 'हस्ति' जैसे शब्द 'धम्म', 'कम्म', 'हस्थि' जैसे रूपों में परिवर्तित हो गये। इसी प्रकार जब मुसलमान आक्रमणकारियों के हाथों में राज्य सत्ता आई ती उनके कारण भी हिन्दी भाषा में परिवर्तन हुआ। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा के संयुक्ताक्षरों के परिवर्तन को ले सकते हैं। 'चन्द्र' का 'चन्दर', 'प्रसाद' को 'परसाद', 'रत्न' को रतन जैसे उच्चारण भाषा परिवर्तन के इसी राजनीतिक कारण का द्योतक है। इसके साथ ही साथ इन मुसलमान शासकों की भाषायें अरबी, फारसी आदि जब हिन्दी भाषा के सम्पर्क में आई तो हिन्दी भाषा ने इनके शब्दों को ग्रहण किया। हिन्दी में आकर इनमें बहुत से शब्दों के रूप तथा उच्चारण में परिवर्तन हो गया। उदाहरण के लिये 'फलों' का 'फलाना 'मजदूर' का 'मजूर', 'लम्हा' का 'लमहा', फकीर का फकीर रूप हो गया। इसी प्रकार अंग्रेजी के बहुत से शब्द हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने पर रूपान्तरित हो गये। लालटेन, बक्सा, टेसन टिकस आदि ऐसे ही रूपान्तरित शब्द है।

(5) आर्थिक कारण किसी समाज की अर्थव्यवस्था भी उस समाज को प्रभावित करती है। फलस्वरूप उस भाषा में परिवर्तन उपस्थित होता है। जिस प्रकार मनुष्य के विभिन्न सामाजिक स्तर होते है उसी प्रकार उनके विभिन्न आर्थिक स्तर भी होते हैं। आर्थिक स्तर की यह भिन्नता भाषा के परिवर्तन का कारण होती है।

(6) सांस्कृतिक कारण हर समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। इस संस्कृति का प्रभाव उस समाज के मनुष्य द्वारा प्रयुक्त भाषा पर भी पड़ता है। यही कारण है कि किसी समाज में प्रचलित भाषा के स्तर को देखकर उसके सांस्कृतिक स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। जिस-जिस समाज में सांस्कृतिक आन्दोलन हुए हैं, भाषा स्वतः विकास के पथ पर आगे बढ़ी है भारत में जैन मत, बौद्ध मत, आर्य समाज आदि के आविर्भाव के साथ-साथ भाषा के क्षेत्र मे भी आन्दोलन हुए हैं। उदाहरण के लिए जहाँ गौतम बुद्ध के द्वारा जन-सामान्य तक अपनी बात पहुँचाने के लिए पालि भाषा का प्रयोग करने पर ढाल दिए जाने से भाषा में परिवर्तन हुआ। इसी प्रकार विभिन्न सांस्कृतिक पुरुषों ने भी भाषा के विकास में पर्याप्त योगदान किया है। विभिन्न संस्कृतियों का जब मिलन होता है तब विचारों का आदान-प्रदान तो होता ही है साथ-ही-साथ भाषाओं पर भी प्रकाश पड़ता है। उदाहरण के लिए दाम. सुरंग जैसे ग्रीक शब्द किताब, कागज, कलम, आदमी औरत जैसे अरबी फारसी शब्द, डॉक्टर, इन्जीनियर, वकील जैसे अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी भाषा में प्रयोग भाषा परिवर्तन के इसी सांस्कृतिक कारण की ओर संकेत करता है।

(7) भौगोलिक कारण- हर देश की अपनी एक विशेष भौगोलिक स्थिति होती है। किसी स्थान की जलवायु उष्ण होती है, तो किसी स्थान की शीतल और किसी स्थान की शीतोष्ण जलवायु की इस भिन्नता का प्रभाव उस स्थान के लोगों की भाषाओं पर भी पड़ता है। जिस स्थान की जलवायु शीत प्रधान है वहाँ के लोगों का वाग्यंत्र पूरी तरह खुल नहीं पाता। यही कारण है कि अंग्रेजी बोलने वाले इंग्लैण्ड के निवासी तुम्हारा को मारा, तोताराम को टोटाराम ठाकुर को टैगोर उच्चारण करते हैं। इसके विपरीत जिस स्थान की जलवायु उष्ण होती है, वहाँ के लोगों का वाग्यंत्र अधिक खुला होता है, अतः उनके द्वारा उच्चरित ध्वनियाँ स्पष्ट एवं मुखर होती हैं।

(8) वैज्ञानिक कारण- आज का युग विज्ञान का है। विज्ञान ने मानव जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है अतः उसके इस प्रभाव से भाषा भी अछूती न रह सकी वैज्ञानिक आविष्कारों को समझने के लिए तथा उन्हें नाम देने के लिए संसार की भाषाओं में नित्य प्रति नये-नये शब्दों का निर्माण हो रहा है। अतः हिन्दी भाषा ने भी विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया है। एटम के लिए 'परमाणु', 'कम्पाउंड' के लिए यौगिक, 'वेपर' के लिए 'वाष्प' जैसे शब्द इसके उदाहरण हैं।

यूनिट-4

देवनागरी लिपि की विकास यात्रा

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता

हिंदी वर्तनी के नियम

देवनागरी लिपि के विकास का वृक्ष

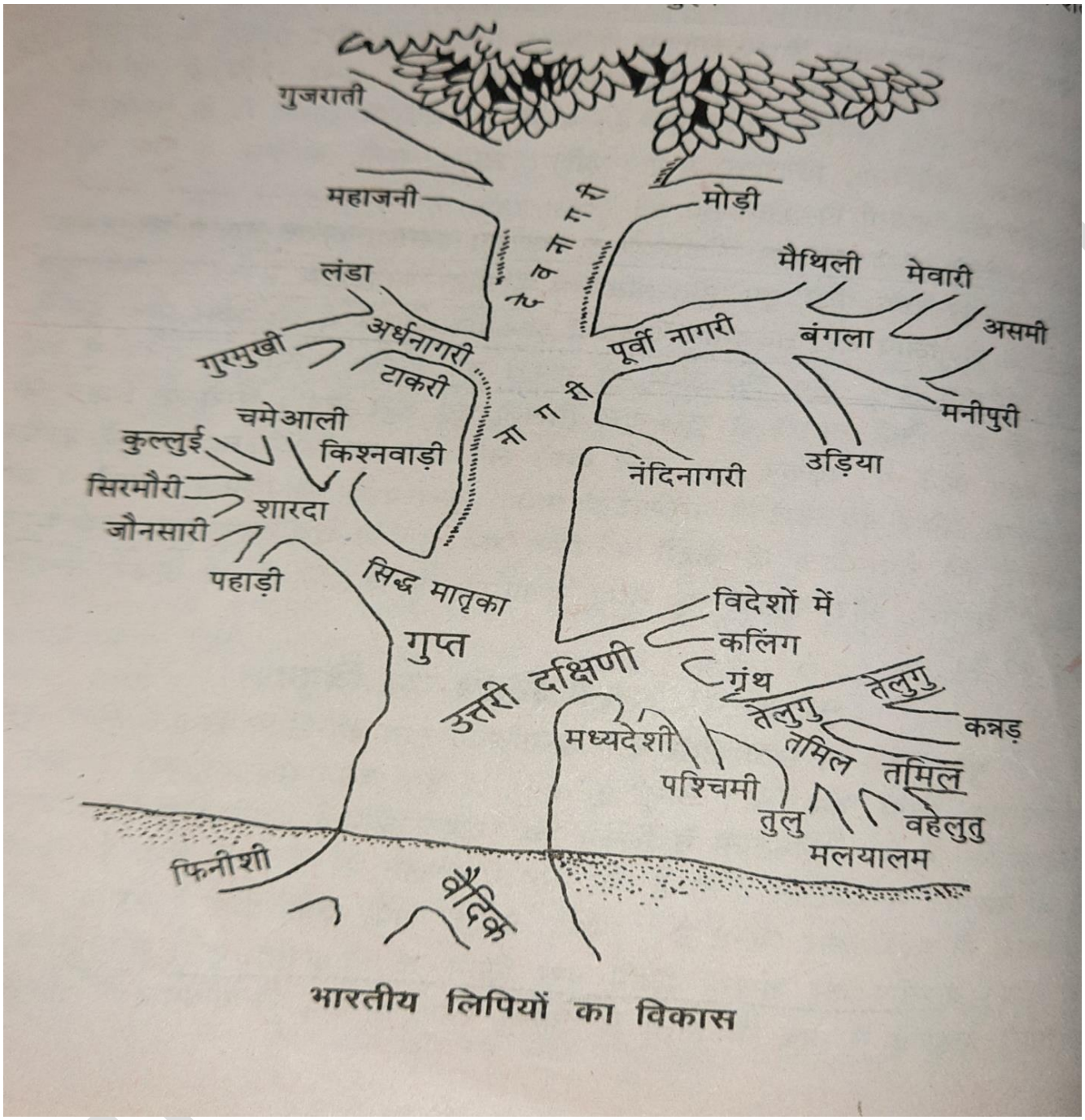

1.देवनागरी लिपि की विकास यात्रा-

भारत में लिपि का इतिहास

लिपि ऐसे प्रतीक-चिह्नों का संयोजन है जिनके द्वारा श्रव्य भाषा को दृष्टिगोचर बनाया जाता है। सुनी या कही हुई बात केवल उसी समय और उसी स्थान पर उपयोगी होती है। किंतु लिपिबद्ध कथन या विचार दिक् और काल की सीमाओं को लांघ सकते हैं। भारत में लगभग छठी शताब्दी ई.पू. में अस्तित्व में आई ब्राह्मी लिपि ने भी बहुत-सी लिपियों को जन्म दिया है। भारत की सारी वर्तमान लिपियां (अरबी-फारसी लिपि को छोड़कर) ब्राह्मी से ही विकसित हुई हैं। इतना ही नहीं तिब्बती, सिंहली तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की बहुत-सी लिपियां ब्राह्मी से ही जन्मी हैं। तात्पर्य यही कि धर्म की तरह लिपियां भी देशों और जातियों की सीमाओं को लांघती चली गई। भाषाओं की सीमाएं लांघना तो लिपियों के लिए बहुत ही सरल काम रहा है। जो लिपि आरंभ में एक सेमेटिक भाषा के लिए अस्तित्व में आई थी, उसे बाद में 'भारोपीय भाषा परिवार' की अनेक भाषाओं के लिए अपना लिया गया।

प्राचीन काल से ही लेखन-कला को पवित्र माना जाता रहा है। प्राय: सभी प्राचीन सभ्यताओं ने अपनी लिपियों के आविष्कर्त्ता के रूप में किसी न किसी देवता की कल्पना की है। भारत में यह मान्यता थी कि लिपि के निर्माता ब्रह्मा हैं, और शायद इसीलिए हमारे देश की प्राचीन लिपि का नाम ब्राह्मी पड़ा। प्राचीन मिस्र के थोत को लेखन का देवता माना जाता था। बेबीलोन में लेखन का देवता नेबो था। प्राचीन यहूदी परंपरा के अनुसार लिपि के जनक पैगंबर मूसा थे। इस्लाम की मान्यता है कि अल्लाह ने ही अक्षर बनाए और आदम को सौंपे। कुछ यूनानी अनुश्रुतियों में हेर्मेस को यूनानी लिपि का जनक बताया गया है। परंतु ई.पू. छठी शताब्दी का प्रसिद्ध इतिहासकार हिरोदोतस स्पष्ट शब्दों में लिखता है कि यूनानी लिपि का निर्माण फिनीशियन लिपि के आधार पर हुआ। आज हम जानते हैं कि लिपियां मानव की ही कृतियां है; उन्हें ईश्वर या देवता ने नहीं बनाया। प्राचीन काल में किसी पुरातन और कुछ जटिल वस्तु को रहस्यमय बनाए रखने के लिए उस पर ईश्वर या किसी देवता की मुहर लगा दी जाती थी; किंतु आज हम जानते हैं कि लेखन-कला किसी 'ऊपर वाले' की देन नहीं है, बल्कि वह मानव की ही बौद्धिक कृति है।

भारत की प्रमुख लिपियाँ

भाषा का आधार ध्वनि है। भाषा श्रव्य या कर्णगोचर होती है। अभी उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों तक बोली गई भाषा को स्थायी रूप देने के लिए उसे लिपिबद्ध करने के अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं था।

ब्राह्मी लिपि

ब्राह्मी लिपि एक प्राचीन लिपि है जिससे कई एशियाई लिपियों का विकास हुआ है। प्राचीन ब्राह्मी लिपि के उत्कृष्ट उदाहरण सम्राट अशोक (असोक) द्वारा ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में बनवाये गये शिलालेखों के रूप में अनेक स्थानों पर मिलते हैं। नये अनुसंधानों के आधार 6 वीं शताब्दी ईसा पूर्व के लेख भी मिले है। ब्राह्मी भी खरोष्ठी की तरह ही पूरे एशिया में फैली हुई थी। अशोक ने अपने लेखों की लिपि को 'धम्मलिपि' का नाम दिया है; उसके लेखों में कहीं भी इस लिपि के लिए 'ब्राह्मी' नाम नहीं मिलता। लेकिन बौद्धों, जैनों तथा ब्राह्मण-धर्म के ग्रंथों के अनेक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इस लिपि का नाम 'ब्राह्मी' लिपि ही रहा होगा। हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में यह बात आम तौर से पाई जाती है कि जिस किसी भी चीज़ की उत्पत्ति कुछ अधिक प्राचीन या अज्ञेय हो उसके निर्माता के रूप में बड़ी आसानी से 'ब्रह्मा' का नाम ले लिया जाता है। संसार की अन्य पुरालिपियों की उत्पत्ति के बारे में भी यही देखने को मिलता है कि प्राय: उनके जनक कोई न कोई दैवी पुरुष ही माने गए हें। हमारे यहाँ भी 'ब्रह्मा' को लिपि का जन्मदाता माना जाता रहा है, और इसीलिए हमारे देश की इस प्राचीन लिपि का नाम ब्राह्मी पड़ा है।

खरोष्ठी लिपि

अशोक के सिद्दापुर (ज़िला चित्रदुर्ग, कर्नाटक) के पास के ब्रह्मगिरि लेख की अंतिम पंक्ति।इसमें बाईं ओर के शब्द हैं चपडेने लिखिते (ब्राह्मी में) और दाईं ओर का शब्द है लिपकिरण (खरोष्ठी लिपि में), जो दाईं ओर से बाईं ओर पढ़ा जाएगा। खरोष्ठी लिपि गान्धारी लिपि के नाम से जानी जाती है । जो गान्धारी और संस्कृत भाषा को लिपिवद्ध प्रयोग करने में आती है । इसका प्रयोग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से तीसरी शताब्दी तक प्रमुख रूप से एशिया में होता रहा है । कुषाण काल में इसका प्रयोग भारत में बहुतायत में हुआ । बौद्ध उल्लेखों में खरोष्ठी लिपि प्रारम्भ से भी प्रयोग में आयी । कहीं-कहीं सातवी शताब्दी में भी इसका प्रयोग हुआ है। एक प्राचीन भारतीय लिपि जो अरबी लिपि की तरह दांये से बांये को लिखी जाती थी। चौथी-तीसरी शताब्दी ई.पू. में भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांतों में इस लिपि का प्रचलन था। शेष भागों में ब्राह्मी लिपि का प्रचलन था जो बांये से दांये को लिखी जाती थी। इस लिपि के प्रसार के कारण खरोष्ठी लिपि लुप्त हो गई इस लिपि में लिखे हुए कुछ सिक्के और अशोक के दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं।

शारदा लिपि

ईसा की दसवीं शताब्दी से उत्तर-पूर्वी पंजाब और कश्मीर में शारदा लिपि का व्यवहार देखने को मिलता है। ब्यूह्लर का मत था कि शारदा लिपि की उत्पत्ति गुप्त लिपि की पश्चिमी शैली से हुई है, और उसके प्राचीनतम लेख 8वीं शताब्दी से मिलते हैं। ब्यूह्लर ने जालंधर (कांगड़ा) के राजा जयचंद्र की कीरग्राम के बैजनाथ मन्दिर में लगी प्रशस्तियों का समय 804 ई. माना था, और इसी के अनुसार इन्होंने शारदा लिपि का आरम्भकाल 800 ई. के आस-पास निश्चित किया था।

कलिंग लिपि

कलिंग प्रदेश में ईसा की 7वीं से 12वीं शताब्दी तक जिस लिपि का प्रयोग हुआ, उसे कलिंग लिपि का नाम दिया गया है। इस लिपि का प्रयोग अधिकतर कलिंगनगर (मुखलिंगम्, गंजाम ज़िले में पर्लाकिमेडी से 20 मील दूर) के गंगवंशी राजाओं के दानपत्रों में देखने को मिलता है। इन राजाओं ने 'गांगेय संवत्' का उपयोग किया है। यह संवत् ठीक किस साल से आरम्भ होता है, यह अभी तक जाना नहीं जा सका है।

बांग्ला लिपि

बांग्ला लिपि भारतवर्ष के पूर्वी विभाग अर्थात् मगध की तरफ की लिपि से निकली है और बिहार, बंगाल, मिथिला, नेपाल, आसाम तथा उड़ीसा से मिलने वाले कितने एक शिलालेख, दानपत्र, सिक्कों या हस्तलिखित पुस्तकों में पाई जाती है।

तेलुगु एवं कन्नड़ लिपि

वर्तमान तेलुगु और कन्नड़ लिपियों में काफ़ी समानता है। दोनों का विकास एक ही मूल लिपि-शैली से हुआ है। आज इन लिपियों का प्रयोग कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु के कुछ ज़िलों में होता है। इस लिपि का आद्य स्वरूप आरम्भिक चालुक्य अभिलेखों में देखने को मिलता है। पश्चिमी दक्खन (दक्षिण) में बनवासी के कदंबों के लेखों में और बादामी के चालुक्यों के लेखों में इस लिपि का आद्य रूप देखने को मिलता है। बादामी के प्रसिद्ध राजा पुलकेशी प्रथम (वल्लभेश्वर) का एक अभिलेख 1941 ई. में मिला है। इसमें शकाब्द 465 (543 ई.) का प्रयोग किया गया है। अल्फ़्रेड मास्टर के अनुसार कन्नड़ लिपि का प्राचीनतम अभिलेख हळेबीडु शिलालेख है, जिसे वे पाँचवीं शताब्दी का मानते हैं।

ग्रन्थ लिपि

तमिलनाडु के ऑर्काट, सेलम, तिरुचिरापल्ली, मदुरै, तिरुनेल्वेलि तथा पुराने तिरुवितांकुर (ट्रावंकोर) राज्य में 7वीं शताब्दी से इस लिपि का व्यवहार होता था। दक्षिण के पाण्ड्य, पल्लव तथाचोल राजाओं ने अपने अभिलेखों में इस लिपि का प्रयोग किया है। दक्षिण भारत की स्थानीय लिपियों की अपूर्णता के कारण संस्कृत भाषा के ग्रन्थ एवं अभिलेख उनमें नहीं लिखे जा सकते थे। संस्कृत के ग्रन्थ तथा अभिलेख लिखने के लिए जिस लिपि का दक्षिण भारत में उपयोग होता था, उसी को आगे चलकर 'ग्रन्थ लिपि' का नाम दिया गया।

तमिल लिपि

तमिल भाषा के प्राचीनतम लेख दक्षिण भारत की कुछ गुफ़ाओं में मिलते हैं। ये लेख ई.पू. पहली-दूसरी शताब्दी के माने गए हैं और इनकी लिपि ब्राह्मी लिपि ही है। लेकिन इसके बाद सातवीं सदी तक तमिल लिपि के विकास का कोई सूत्र हमारे हाथ नहीं लगता।

सिन्धु लिपि

सिंधु सभ्यता की उत्कीर्ण मुद्रा सिन्धु घाटी की सभ्यता से संबंधित छोटे-छोटे संकेतों के समूह को सिन्धु लिपि कहते हैं। इसे सिन्धु-सरस्वती लिपि और हड़प्पा लिपि भी कहते हैं। सिन्धु सभ्यता का उदघाटन 1920 ई. के बाद हुआ। यदि हमारे पुरातत्त्ववेत्ता अधिक सचेत होते तो इस सभ्यता की खोज उन्नीसवीं शताब्दी में ही हो गई होती। मेसोने ने 1820 में पहली बार हड़प्पा के टीलों को पहचाना था। 1865 में ब्रिटेन-बंधुओं-जॉन और विलियम कोलाहौर से कराची तक की रेल लाइन बनाने का ठेका मिला। विलियम ने मुल्तान-लाहौर लाइन का निर्माण किया और इस लाइन की गिट्टी के लिए हड़प्पा की ईटों का अंधाधुंध इस्तेमाल किया। 'आज रेलगाड़ियाँ सौ मील तक ऐसी पटरियों पर से गुज़रती हैं, जो ई. पू. तीसरी सहशताब्दी की बनी हुई ईटों पर मज़बूती से टिकी हुई हैं। ईटों की इस लूट के दौरान कई प्रकार के पुरावशेष प्राप्त हुए। इनमें से अधिक आकर्षक पुरावशेषों को मज़दूरों और इंजीनियरों ने रख लिया'।

गुरुमुखी लिपि

गुरुमुखी लिपि वह लिपि है, जिसमें सिक्खों का धर्मग्रन्थ 'ग्रन्थ साहब' लिखा हुआ है। गुरु नानक के उत्तराधिकारी गुरु अंगद ने नानक के पदों के लिए गुरुमुखी लिपि को स्वीकार किया, जो ब्राह्मी से निकली थी और पंजाब में उनके समय में प्रचलित थी। गुरुवाणी इसमें लिखी गई, इसलिए इसका नाम 'गुरुमुखी' पड़ गया।

देवनागरी लिपि

इसमें कुल 52 अक्षर हैं, जिसमें 14 स्वर और 38 व्यंजन हैं। अक्षरों की क्रम व्यवस्था (विन्यास) भी बहुत ही वैज्ञानिक है। स्वर-व्यंजन, कोमल-कठोर, अल्पप्राण-महाप्राण, अनुनासिक्य-अन्तस्थ-उष्म इत्यादि वर्गीकरण भी वैज्ञानिक हैं। एक मत के अनुसार देवनगर (काशी) में प्रचलन के कारण इसका नाम देवनागरी पड़ा। भारत तथा एशिया की अनेक लिपियों के संकेत देवनागरी से अलग हैं (उर्दू को छोडकर), पर उच्चारण व वर्ण-क्रम आदि देवनागरी के ही समान हैं- क्योंकि वो सभी ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न हुई हैं। इसलिए इन लिपियों को परस्पर आसानी से लिप्यन्तरित किया जा सकता है। देवनागरी लेखन की दृष्टि से सरल, सौन्दर्य की दृष्टि से सुन्दर और वाचन की दृष्टि से सुपाठ्य है। लिपि का शाब्दिक अर्थ होता है -लिखित या चित्रित करना। ध्वनियों को लिखने के लिए जिन चिह्नों का प्रयोग किया जाता है, वही लिपि कहलाती है। हिन्दी की लिपि देवनागरी है। हिन्दी के अलावा -संस्कृत ,मराठी, कोंकणी, नेपाली आदि भाषाएँ भी देवनागरी में लिखी जाती है।

2. देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता-

अधिकांश व्यक्ति इस कथन से परिचित हैं कि देवनागरी लिपि सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। अक्षरों की क्रम व्यवस्था (विन्यास) भी बहुत ही वैज्ञानिक है। स्वर-व्यंजन , कोमल-कठोर, अल्पप्राण-महाप्राण , अनुनासिक्य-अन्तस्थ-उष्म इत्यादि वर्गीकरण भी वैज्ञानिक हैं। देवनागरी लिपि का प्रारंभिक रूप पहले सीधा-सादा था । सभ्यता के विकास के साथ इसे भी आकर्षक तथा व्यवस्थित करके वर्तमान रूप में लाया गया । 'पाणिनि' के व्याकरण-ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' के अनुसार ११ स्वर और ३३ व्यंजनों का समावेश हुआ ।यह रहे देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता के कारण-

1. वह ध्वनिपरक है-

साथ ही वर्णमाला में सभी संभव ध्वनियों के लिए विशेष संकेत भी नियत किए गए हैं । देवनागरी लिपि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह ध्वनिपरक है और संकेत, लेखन तथा उच्चारण में कोई भेद नहीं रखती है । पाठक को अपनी तरफ से किसी ध्वन्यांश को मिलाने या छोड़ने की जरूरत नहीं पड़ती है । नागरी लिपि अक्षरात्मक लिपि है। अक्षरात्मक लिपि में प्रत्येक ध्वनि के लिए पृथक-पृथक वर्ण होते हैं। इसमें प्रत्येक स्तर के लिए भिन्न

चिह्न होता है, जो उच्चारण के अनुरूप लिखे जाते हैं।जैसे यदि 'रहीम' बोलना है, तो उसे र+अ+ह+ई+म+अ लिखना होगा। जबकि अंग्रेजी में ऐसा नहीं है। उसमें अनेक लिखी हुई ध्वनियों का उच्चारण नहीं होता। जैसे-'KNIFE' | इसका उच्चारण 'नाईफ है। इसमें 'K' ध्वनि का उच्चारण नहीं होता।

2. वर्णमाला के वर्गीकरण में व्याकरण शास्त्र

इसकी वर्णमाला के वर्गीकरण में व्याकरण शास्त्र ने उच्चारण-स्थान उच्चारण में श्वास-गति और जिह्वा की स्थितियों का बराबर ध्यान रखा है । इतनी"देवनागरी" लिपि को "गढ़ने"में भारतीय ऋषियों ने अत्यन्त वैज्ञानिक दृष्टि का प्रयोग किया है। सर्वप्रथम स्वतन्त्र रूप से उच्चारित वर्णों (स्वरों) को स्थान दिया गया है और फिर स्वरों की सहायता से बोले जाने योग्य वर्णों (व्यंजनों) को महत्त्व दिया गया है। दूसरी विशेषता यह है कि लघु स्वर पहले लिखे जाते हैं उसके बाद दीर्घ स्वर और उसके पश्चात् गुण वृद्धि स्वर (ए,ओ, ऐ, औ) के अनुसार लिखे जाते हैं। उच्चारण की दृष्टि से भी इन स्वरों में क्रम निर्धारित किया गया है। इसी प्रकार स्पर्श व्यंजनों में पाँच वर्ग बना दिये गये हैं। प्रत्येक वर्ग के अक्षर एक-एक उच्चारण-स्थान से बोले जाते हैं।जिसमें पहला तीसरा और पाँचवाँ अल्पप्राण,दूसरा और चौथा महाप्राण वर्ण है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग की ध्वनियों में पहले अघोष एवं उसके बाद सघोष ध्वनियों का उल्लेख है। इस प्रकार पहले की दो ध्वनियाँ अघोष तथा अंतिम तीन ध्वनियाँ सघोष हो जाती हैं। फिर वर्ग के पाँच अक्षरों के क्रम में भी वैज्ञानिकता है। सभी वर्गों के वर्गों के उच्चारण में एक ही उच्चारण-स्थान काम करता है और इसी प्रकार अगले सभी वर्गों में इस प्रकार अन्तःस्थ और ऊष्म में भी वैज्ञानिक बुद्धि से काम लिया गया है।

क वर्ग	**क**	**ख**	**ग**	**ध**	**ङ**	**(कंठ)**
च वर्ग	**च**	**छ**	**ज**	**झ**	**ञ**	**(तालु)**
ट वर्ग	**ट**	**ठ**	**ड**	**ढ**	**ण**	**(मुर्धा)**
त वर्ग	**त**	**थ**	**द**	**ध**	**न**	**(दंन्त)**
प वर्ग	**प**	**फ**	**ब**	**भ**	**म**	**(होठ)**

अल्पप्राण **महाप्राण**

3.सर्वांगपूर्ण और वैज्ञानिक वर्णमाला-

वर्ण की गहन व्याख्या एक कठिन तथा दीर्घ समय साध्य कार्य है, अतः अधिक विस्तार में न जाते हुए संक्षेप में इतना लिखना पर्याप्त होगा कि एक वर्ण एक अक्षर से छोटी इकाई है। वर्ण वस्तुतः एक मूल ध्वनि है, एक आधार ध्वनि है। एक अक्षर में एक, दो, तीन या इससे भी अधिक वर्ण हो सकते हैं, किंतु एक वर्ण में एक से अधिक अक्षर नहीं हो सकते हैं। अंगे्रजी (रोमन लिपि) के अल्फाबेट्स में 'B' के नाम में 'ब्' तथा 'ई', 'C' के नाम में 'स्' तथा 'ई' दो-दो वर्ण हैं, जबकि 'L' के नाम में 'ऐ' 'ल्' एवं 'अ' तीन वर्ण हैं इत्यादि। जबकि देवनागरी लिपि की वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर केवल एक वर्ण को प्रदर्शित करता है।

4.**वर्ण जैसे बोले जाते हैं, वैसे ही लिखे जाते हैं-**

देवनागरी लिपि के वर्ण जैसे बोले जाते हैं, वैसे ही लिखे जाते हैं, जैसे लिखे जाते हैं, वैसे ही बोले जाते हैं। उनके बोलने और लिखने में अन्य भाषाओं की लिपियों के समान, भेद नहीं है।हिन्दी में हम "स" ही बोलेंगे और "स" ही लिखेंगे परन्तु उर्दु में "सीनः""स्वाद", से इन तीनों वर्गों के लिखने का झगड़ा पैदा होगा और वहाँ भी लिखने तथा बोलने से भेद रहेगा। यही अवस्था अंग्रेजी के "सी" और "एस" की है।अंग्रेजी में लिखा जायेगा काल्म यह एक ध्वन्यात्मक लिपि है अर्थात इसमें जैसे बोला जाता है, वैसे ही लिखा जाता है। दूसरे शब्दों में इसके प्रत्येक अक्षर का जो नाम है वही उसका उच्चारण है। यथा 'क' का नाम व उच्चारण भी क है इत्यादि, जबकि अन्य लिपियों में ऐसा नहीं है। रोमन लिपि में अक्षर 'H' का नाम एच है, परंतु उच्चारण 'ह' होता है।'W' का नाम डब्ल्यू है, परंतु उच्चारण 'व' होता है 'G' का नाम तो 'जी' है परंतु इसका उपयोग प्रायः 'ग' के लिए होता है। केवल 'O' के अतिरिक्त सभी अक्षरों का उच्चारण उनके नाम से पृथक है, यहां तक कि कई शब्दों में O का उच्चारण भी 'ओ' नहीं होता है, जैसे colour (कलर)। ग्रीक लिपि में अ उच्चारण के लिए काम लिया जाने वाला अक्षर अल्फा अ के लिए, ब के लिए बीटा , ग के लिए गामा इत्यादि अक्षर हैं।

5.प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग-अलग चिह्न-

एक ध्वनि एक लिपि-नागरी लिपि में प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग-अलग चिह्न हैं, तथा एक चिह्न की एक ही ध्वनि है। जबकि रोमन लिपि में एक ध्वनि के लिए अनेक लिपिचिह्न हैं । जैसे-रोमन लिपि में 'S' की तीन ध्वनियाँ हैं-स, ज, श,। इसी प्रकार 'क' ध्वनि के लिए C,K,Q, का प्रयोग किया जाता है। पृथक-पृथक् लिपि चिह्न- इसमें प्रत्येक स्वर एवं व्यंजन ध्वनि के लिए पृथक् लिपि चिह्न है। यद्यपि ऐसा करने से कुल स्वर एवं व्यंजनों की संख्या रोमन लिपि की तुलना में अधिक अवश्य हो गई है, किन्तु इससे लिपि में वैज्ञानिकता अधिक आ गई है। उदाहरण के लिए नागरी लिपि में अल्पप्राण एवं महाप्राण ध्वनियों के लिए अलग-अलग लिपि हैं। जैसे-क (अल्पप्राण). ख (महाप्राण). जबकि रोमन लिपि में इसके लिए होगा-K (क), KH (ख)।

6.व्यंजन चिह्न की आक्षरिकता–

इससे तात्पर्य है-व्यंजन के उच्चारण के साथ स्वर का उच्चारण होना। यह गुण नागरी लिपि में ही है, रोमन आदि में नहीं। इसके कारण नागरी लिपि में लेखन की गति बढ़ जाती है।उदाहरण के लिए यदि 'मदन' को अंग्रेजी में लिखना होगा, तो लिखेंगे- MADANAA स्पष्ट है कि जहाँ नागरी में इसे केवल तीन चिह्नों द्वारा व्यक्त कर दिया गया है, वहीं रोमन में छ: चिह्नों की आवश्यकता पड़ी है।

7.व्यंजनों पर केवल मात्रा लगाने से उच्चारण परिवर्तित-

देवनागरी लिपि की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इसमें व्यंजनों पर केवल मात्रा लगाने मात्र से उनका उच्चारण परिवर्तित हो जाता है, कोई अन्य अक्षर नहीं लिखना पड़ता है। साथ ही प्रत्येक मात्रा प्रत्येक व्यंजन के साथ सभी समय एक ही प्रकार का परिवर्तन हो जाता है, कोई अन्य अक्षर नहीं लिखना पड़ता है। प्रत्येक मात्रा प्रत्येक व्यंजन के साथ सभी समय एक ही प्रकार का परिवर्तन करती है, भिन्न-भिन्न प्रकार के परिवर्तन नहीं होते हैं। जैसे अंग्रेजी में Put तो पुट होता है, परंतु But बट और Cut कट ही रह जाता है, अर्थात But और Cut में 'U' प्रभावहीन हो जाता है। Kite काइट होता है, किंतु Sit सिट होता है। देवनागरी लिपि में ऐसा भ्रम कभी भी नहीं होता है।

8.विदेशी ध्वनियों को व्यक्त करने में समर्थ-

देवनागरी लिपि में यह भी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि इस लिपि में विदेशी ध्वनियों को व्यक्त करने की समर्थता है। कुछ विदेशी ध्वनियों को व्यक्त करने के लिये लिपिचिह्न भी लिये गये हैं; जैसे-ऑ, क आदि।

9. गौरवपूर्ण लिपि-

देवनागरी लिपि हमारे देश का गौरव है। हमारे देश का अधिकतर साहित्य इस लिपि में सुरक्षित है। इस लिपि का देश में प्रचलित लगभग सभी लिपियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हिन्दी भाषा के अतिरिक्त यह संस्कृत, मराठी और नेपाली भाषाओं की लिपि भी है। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से भी यह लिपि गौरवमयी लिपि कही जाती है।

वैसे देवनागरी लिपि की वैज्ञानिक विशेषताएं इतनी विस्तृत हैं कि उन्हें कुछ पंक्तियों में अथवा दो-चार पृष्ठों में व्यक्त करना एक दुष्कर कार्य है तथापि अत्यंत ही संक्षेप में उनका वर्णन निम्नानुसार किया जा सकता है।देवनागरी लिपि के वर्गों की बनावट सरल और है। इसे सीखने में कठिनाई नहीं आती। इसे आसानी से सीखा जा सकता है।

विद्वानों के मतानुसार-

"नागरी वर्णमाला के समान सर्वांगपूर्ण और वैज्ञानिक कोई दूसरी वर्णमाला नहीं है।"- बाबूराव विष्णु पराडकर,

"हमारी नागरी दुनिया की सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपि है।"- महापंडित राहुल सांकृत्यायन,

"देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता स्वयं सिद्ध है।" – आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी,

"समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है।"- जस्टिस कृष्णास्वामी अय्यर

मानक हिंदी वर्तनी के नियम

केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा वर्ष 2003 में देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी के मानकीकरण के लिए अखिल भारतीय संगोष्ठी का आयोजन किया था। इस संगोष्ठी में **मानक हिंदी वर्तनी** के लिए निम्नलिखित नियम निर्धारित किए गए थे:

1. संयुक्त वर्ण

1.1 खड़ी पाई वाले व्यंजन

खड़ी पाई वाले व्यंजनों के संयुक्त रूप परंपरागत तरीके से खड़ी पाई को हटाकर ही बनाए जाएँ। यथा:–

- ख्याति, लग्न, विघ्न,कच्चा, छज्जा,नगण्य ,कुत्ता, पथ्य, ध्वनि, न्यास ,प्यास, डिब्बा, सभ्य, रम्य
- शय्या ,उल्लेख ,व्यास ,श्लोक ,राष्ट्रीय ,स्वीकृति ,यक्ष्मा ,त्र्यंबक

1.2 अन्य व्यंजन

1.2.1 क और फ/फ़ के संयुक्ताक्षर

संयुक्त, पक्का, दफ़्तर आदि की तरह बनाए जाएँ, न कि संयुक्त, (पक्का लिखने में क के नीचे क नहीं) की तरह।

1.2.2 ङ, छ, ट, ड, ढ, द और ह के संयुक्ताक्षर हल् चिह्न लगाकर ही बनाए जाएँ। यथा:–

- वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या, चिह्न, ब्रह्मा आदि। (वाङ्मय, बुड्ढा, विद्या, चिह्न, ब्रह्मा नहीं)

1.2.3 संयुक्त 'र' के प्रचलित तीनों रूप यथावत् रहेंगे। यथा:– प्रकार, धर्म, राष्ट्र।

1.2.4 श्र का प्रचलित रूप ही मान्य होगा। इसे ... (इसे मैं टाइप नहीं कर पा रहा हूँ। क्र में क के बदले श लिखा मान लें) के रूप में नहीं लिखा जाएगा। त+र के संयुक्त रूप के लिए पहले त्र और ... (इसे मैं टाइप नहीं कर पा रहा हूँ। क्र में क के बदले त लिखा मान लें) दोनों रूपों में से किसी एक के प्रयोग की छूट दी गई थी। परंतु अब इसका परंपरागत रूप त्र ही मानक माना जाए। श्र और त्र के अतिरिक्त अन्य व्यंजन+र के संयुक्ताक्षर 2.1.2.3 के नियमानुसार बनेंगे। जैसे :– क्र, प्र, ब्र, स्र, ह्र आदि।

1.2.5 हल् चिह्न युक्त वर्ण से बनने वाले संयुक्ताक्षर के द्वितीय व्यंजन के साथ इ की मात्रा का प्रयोग संबंधित व्यंजन के तत्काल पूर्व ही किया जाएगा, न कि पूरे युग्म से पूर्व। यथा:– कुट्टिम, चिट्ठियाँ, द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित आदि (कुट्टिम, चिट्ठियाँ, द्वितीय, बुद्धिमान, चिह्नित नहीं)।

2.2 कारक चिह्न

2.2.1 हिंदी के कारक चिह्न सभी प्रकार के संज्ञा शब्दों में प्रातिपदिक से पृथक् लिखे जाएँ। जैसे :– राम ने, राम को, राम से, स्त्री का, स्त्री से, सेवा में आदि। सर्वनाम शब्दों में ये चिह्न प्रातिपादिक के साथ मिलाकर लिखे जाएँ। जैसे :– तूने, आपने, तुमसे, उसने, उसको, उससे, उसपर आदि (मेरेको, मेरेसे आदि रूप व्याकरण सम्मत नहीं हैं)।

2.2.2 सर्वनाम के साथ यदि दो कारक चिह्न हों तो उनमें से पहला मिलाकर और दूसरा पृथक् लिखा जाए। जैसे :– उसके लिए, इसमें से।

2.2.3 सर्वनाम और कारक चिह्न के बीच 'ही', 'तक' आदि का निपात हो तो कारक चिह्न को पृथक् लिखा जाए। जैसे :– आप ही के लिए, मुझ तक को।

2.3 क्रिया पद

संयुक्त क्रिया पदों में सभी अंगीभूत क्रियाएँ पृथक्-पृथक् लिखी जाएँ। जैसे :– पढ़ा करता है, आ सकता है, जाया करता है, खाया करता है, जा सकता है, कर सकता है, किया करता था, पढ़ा करता था, खेला करेगा, घूमता रहेगा, बढ़ते चले जा रहे हैं आदि।

2.4 हाइफ़न (योजक चिह्न)

2.4.1 द्वंद्व समास में पदों के बीच हाइफ़न रखा जाए। जैसे :– राम-लक्ष्मण, शिव-पार्वती संवाद, देख-रेख, चाल-चलन, हँसी-मज़ाक, लेन-देन, पढ़ना-लिखना, खाना-पीना, खेलना-कूदना आदि।

2.4.2 सा, जैसा आदि से पूर्व हाइफ़न रखा जाए। जैसे :– तुम-सा, राम-जैसा, चाकू-से तीखे।

2.4.3 तत्पुरुष समास में हाइफ़न का प्रयोग केवल वहीं किया जाए जहाँ उसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, अन्यथा नहीं। जैसे :– भू-तत्व। सामान्यत: तत्पुरुष समास में हाइफ़न लगाने की आवश्यकता नहीं है। जैसे :– रामराज्य, राजकुमार, गंगाजल, ग्रामवासी, आत्महत्या आदि।

2.4.3.1 इसी तरह यदि 'अ-निख' (बिना नख का) समस्त पद में हाइफ़न न लगाया जाए तो उसे 'अनख' पढ़े जाने से 'क्रोध' का अर्थ भी निकल सकता है। अ-नति (नम्रता का अभाव) : अनति (थोड़ा), अ-परस (जिसे किसी ने न छुआ हो) : अपरस (एक चर्म रोग), भू-तत्व

(पृथ्वी-तत्व) : भूतत्व (भूत होने का भाव) आदि समस्त पदों की भी यही स्थिति है। ये सभी युग्म वर्तनी और अर्थ दोनों दृष्टियों से भिन्न-भिन्न शब्द हैं।

2.4.4 कठिन संधियों से बचने के लिए भी हाइफ़न का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे :– द्वि-अक्षर (द्व्यक्षर), द्वि-अर्थक (द्व्यर्थक) आदि।

2.5 अव्यय

2.5.1 'तक', 'साथ' आदि अव्यय सदा पृथक् लिखे जाएँ। जैसे :– यहाँ तक, आपके साथ।

2.5.2 आह, ओह, अहा, ऐ, ही, तो, सो, भी, न, जब, तब, कब, यहाँ, वहाँ, कहाँ, सदा, क्या, श्री, जी, तक, भर, मात्र, साथ, कि, किंतु, मगर, लेकिन, चाहे, या, अथवा, तथा, यथा और आदि अनेक प्रकार के भावों का बोध कराने वाले अव्यय हैं। कुछ अव्ययों के आगे कारक चिह्न भी आते हैं। जैसे :– अब से, तब से, यहाँ से, वहाँ से, सदा से आदि। नियम के अनुसार अव्यय सदा पृथक् लिखे जाने चाहिए। जैसे :– आप ही के लिए, मुझ तक को, आपके साथ, गज़ भर कपड़ा, देश भर, रात भर, दिन भर, वह इतना भर कर दे, मुझे जाने तो दो, काम भी नहीं बना, पचास रुपए मात्र आदि।

2.5.3 सम्मानार्थक 'श्री' और 'जी' अव्यय भी पृथक् लिखे जाएँ। जैसे श्री श्रीराम, कन्हैयालाल जी, महात्मा जी आदि (यदि श्री, जी आदि व्यक्तिवाची संज्ञा के ही भाग हों तो मिलाकर लिखे जाएँ। जैसे :– श्रीराम, रामजी लाल, सोमयाजी आदि)।

2.5.4 समस्त पदों में प्रति, मात्र, यथा आदि अव्यय जोड़कर लिखे जाएँ (यानी पृथक् नहीं लिखे जाएँ)। जैसे - प्रतिदिन, प्रतिशत, मानवमात्र, निमित्तमात्र, यथासमय, यथोचित आदि। यह सर्वविदित नियम है कि समास न होने पर समस्त पद एक माना जाता है। अत उसे व्यस्त रूप में न लिखकर एक साथ लिखना ही संगत है। 'दस रुपए मात्र', 'मात्र दो व्यक्ति' में पदबंध की रचना है। यहाँ मात्र अलग से लिखा जाए (यानी मिलाकर नहीं लिखें)।

2.6 अनुस्वार (शिरोबिंदु/बिंदी) तथा अनुनासिकता चिह्न (चंद्रबिंदु)

2.6.0 अनुस्वार व्यंजन है और अनुनासिकता स्वर का नासिक्य विकार। हिंदी में ये दोनों अर्थभेदक भी हैं। अत हिंदी में अनुस्वार (ं) और अनुनासिकता चिह्न (ँ) दोनों ही प्रचलित रहेंगे।

2.6.1 अनुस्वार

2.6.1.1 संस्कृत शब्दों का अनुस्वार अन्यवर्गीय वर्णों से पहले यथावत् रहेगा। जैसे - संयोग, संरक्षण, संलग्न, संवाद, कंस, हिंस्र आदि।

2.6.1.2 संयुक्त व्यंजन के रूप में जहाँ पंचम वर्ण (पंचमाक्षर) के बाद सवर्गीय शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण/लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए। जैसे - पंकज, गंगा, चंचल, कंजूस, कंठ, ठंडा, संत, संध्या, मंदिर, संपादक, संबंध आदि (पङ्कज, गङ्गा, चञ्चल, कञ्जूस, कण्ठ, ठण्डा, सन्त, मन्दिर, सन्ध्या, सम्पादक, सम्बन्ध वाले रूप नहीं)। बंधनी में रखे हुए रूप संस्कृत के उद्धरणों में ही मान्य होंगे। हिंदी में बिंदी (अनुस्वार) का प्रयोग करना ही उचित होगा।

2.6.1.3 यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे :– वाङ्मय, अन्य, चिन्मय, उन्मुख आदि (वांमय, अंय, चिंमय, उंमुख आदि रूप ग्राह्य नहीं होंगे)।

2.6.1.4 पंचम वर्ण यदि द्वित्व रूप में (दुबारा) आए तो पंचम वर्ण अनुस्वार में परिवर्तित नहीं होगा। जैसे - अन्न, सम्मेलन, सम्मति आदि (अंन, संमेलन, संमति रूप ग्राह्य नहीं होंगे)।

2.6.1.5 अंग्रेज़ी, उर्दू से गृहीत शब्दों में आधे वर्ण या अनुस्वार के भ्रम को दूर करने के लिए नासिक्य व्यंजन को पूरा लिखना अच्छा रहेगा। जैसे :– लिमका, तनखाह, तिनका, तमगा, कमसिन आदि।

2.6.1.6 संस्कृत के कुछ तत्सम शब्दों के अंत में अनुस्वार का प्रयोग म् का सूचक है। जैसे - अहं (अहम्), एवं (एवम्), परं (परम्), शिवं (शिवम्)।

2.6.2 अनुनासिकता (चंद्रबिंदु)

2.6.2.1 हिंदी के शब्दों में उचित ढंग से चंद्रबिंदु का प्रयोग अनिवार्य होगा।

2.6.2.2 अनुनासिकता व्यंजन नहीं है, स्वरों का ध्वनिगुण है। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में नाक से भी हवा निकलती है। जैसे :– आँ, ऊँ, एँ, माँ, हूँ, आएँ।

2.6.2.3 चंद्रबिंदु के बिना प्राय: अर्थ में भ्रम की गुंजाइश रहती है। जैसे :– हंस : हँस, अंगना : अँगना, स्वांग (स्व+अंग): स्वाँग आदि में। अतएव ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चंद्रबिंदु का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। किंतु जहाँ (विशेषकर शिरोरेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो और चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु का (अनुस्वार चिहन का) प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहाँ चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की छूट रहेगी। जैसे :– नहीं, में, मैं आदि। कविता आदि के प्रसंग में छंद की दृष्टि से चंद्रबिंदु का यथास्थान अवश्य प्रयोग किया जाए। इसी प्रकार छोटे बच्चों की प्रवेशिकाओं में जहाँ चंद्रबिंदु का उच्चारण अभीष्ट हो, वहाँ मोटे अक्षरों में उसका यथास्थान सर्वत्र प्रयोग किया जाए। जैसे :– कहाँ, हँसना, आँगन, सँवारना, मेँ, मैँ, नहीँ आदि।

2.7 विसर्ग (:)

2.7.1 संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए। जैसे :– 'दु:खानुभूति' में। यदि उस शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रूप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा। जैसे :– 'दुख-सुख के साथी'।

2.7.2 तत्सम शब्दों के अंत में प्रयुक्त विसर्ग का प्रयोग अनिवार्य है। यथा :– अत:, पुन:, स्वत:, प्राय:, पूर्णत:, मूलत:, अंतत:, वस्तुत:, क्रमश: आदि।

2.7.3 'ह' का अघोष उच्चरित रूप विसर्ग है, अत: उसके स्थान पर (स) घोष 'ह' का लेखन किसी हालत में न किया जाए (अत:, पुन: आदि के स्थान पर अतह, पुनह आदि लिखना अशुद्ध वर्तनी का उदाहरण माना जाएगा)।

2.7.4 दु:साहस/दुस्साहस, नि:शब्द/निश्शब्द के उभय रूप मान्य होंगे। इनमें द्वित्व वाले रूप को प्राथमिकता दी जाए।

2.7.4.1 निस्तेज, निर्वचन, निश्चल आदि शब्दों में विसर्ग वाला रूप (नि:तेज, नि:वचन, नि:चल) न लिखा जाए।

2.7.4.2 अंत:करण, अंत:पुर, प्रात:काल आदि शब्द विसर्ग के साथ ही लिखे जाएँ।

2.7.5 तद्भव/देशी शब्दों में विसर्ग का प्रयोग न किया जाए। इस आधार पर छ: लिखना गलत होगा। छह लिखना ही ठीक होगा।

2.7.6 प्रायद्वीप, समाप्तप्राय आदि शब्दों में तत्सम रूप में भी विसर्ग नहीं है।

2.7.7 विसर्ग को वर्ण के साथ मिलाकर लिखा जाए, जबकि कोलन चिह्न (उपविराम :) शब्द से कुछ दूरी पर हो। जैसे :– अत:, यों है :–

2.8 हल् चिह्न (◌्)

2.8.1 (◌्) को हल् चिह्न कहा जाए न कि हलंत। व्यंजन के नीचे लगा हल् चिह्न उस व्यंजन के स्वर रहित होने की सूचना देता है, यानी वह व्यंजन विशुद्ध रूप से व्यंजन है। इस तरह से 'जगत्' हलंत शब्द कहा जाएगा क्योंकि यह शब्द व्यंजनांत है, स्वरांत नहीं।

2.8.2 संयुक्ताक्षर बनाने के नियम 2.1.2.2 के अनुसार ङ् छ् ट् ठ् ड् ढ् द् ह् में हल् चिह्न का ही प्रयोग होगा। जैसे : चिह्न, बुड्ढा, विद्वान आदि में।

2.8.3 तत्सम शब्दों का प्रयोग वांछनीय हो तब हलंत रूपों का ही प्रयोग किया जाए; विशेष रूप से तब जब उनसे समस्त पद या व्युत्पन्न शब्द बनते हों। यथा प्राक् :– (प्रागैतिहासिक), वाक्-(वाग्देवी), सत्-(सत्साहित्य), भगवन्-(भगवद्भक्ति), साक्षात्-(साक्षात्कार), जगत्-(जगन्नाथ), तेजस्-(तेजस्वी), विद्युत्-(विद्युल्लता) आदि। तत्सम संबोधन में हे राजन्, हे भगवन् रूप ही स्वीकृत होंगे। हिंदी शैली में हे राजा, हे भगवान लिखे जाएँ। जिन शब्दों में हल् चिह्न लुप्त हो चुका हो, उनमें उसे फिर से लगाने का प्रयत्न न किया जाए। जैसे - महान, विद्वान आदि; क्योंकि हिंदी में अब 'महान' से 'महानता' और 'विद्वानों' जैसे रूप प्रचलित हो चुके हैं।

2.8.4 व्याकरण ग्रंथों में व्यंजन संधि समझाते हुए केवल उतने ही शब्द दिए जाएँ, जो शब्द रचना को समझने के लिए आवश्यक हों (उत् + नयन = उन्नयन, उत् + लास = उल्लास) या अर्थ की दृष्टि से उपयोगी हों (जगदीश, जगन्माता, जगज्जननी)।

2.8.5 हिंदी में हृदयंगम (हृदयम् + गम), उद्धरण (उत्/उद् + हरण), संचित (सम् + चित्) आदि शब्दों का संधि-विच्छेद समझाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इसी तरह 'साक्षात्कार', 'जगदीश', 'षट्कोश' जैसे शब्दों के अर्थ को समझाने की आवश्यकता हो तभी उनकी संधि का हवाला दिया जाए। हिंदी में इन्हें स्वतंत्र शब्दों के रूप में ग्रहण करना ही अच्छा होगा।

2.9 स्वन परिवर्तन

2.9.1 संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी को ज्यों-का-त्यों ग्रहण किया जाए। अत: 'ब्रह्मा' को 'ब्रम्हा', 'चिह्न' को 'चिन्ह', 'उऋण' को 'उरिण' में बदलना उचित नहीं होगा। इसी प्रकार ग्रहीत, दृष्टव्य, प्रदर्शिनी, अत्याधिक, अनाधिकार आदि अशुद्ध प्रयोग ग्राह्य नहीं हैं। इनके स्थान पर क्रमश: गृहीत, द्रष्टव्य, प्रदर्शिनी, अत्यधिक, अनधिकार ही लिखना चाहिए।

2.9.2 जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति में एक द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया है उसे न लिखने की छूट है। जैसे :– अर्द्ध > अर्ध, तत्त्व > तत्व आदि।

2.10 'ऐ', 'औ' का प्रयोग

2.10.1 हिंदी में ऐ (ै), औ (ौ) का प्रयोग दो प्रकार के उच्चारण को व्यक्त करने के लिए होता है। पहले प्रकार का उच्चारण 'है', 'और' आदि में मूल स्वरों की तरह होने लगा है; जबकि दूसरे प्रकार का उच्चारण 'गवैया', 'कौवा' आदि शब्दों में संध्यक्षरों के रूप में आज भी सुरक्षित है। दोनों ही प्रकार के उच्चारणों को व्यक्त करने के लिए इन्हीं चिह्नों (ऐ, ै, औ, ौ) का प्रयोग किया जाए। 'गवय्या', 'कव्वा' आदि संशोधनों की आवश्यकता नहीं है। अन्य उदाहरण हैं :– भैया, सैयद, तैयार, हौवा आदि।

2.10.2 दक्षिण के अय्यर, नय्यर, रामय्या आदि व्यक्तिनामों को हिंदी उच्चारण के अनुसार ऐयर, नैयर, रामैया आदि न लिखा जाए, क्योंकि मूलभाषा में इसका उच्चारण भिन्न है।

2.10.3 अव्वल, कव्वाल, कव्वाली जैसे शब्द प्रचलित हैं। इन्हें लेखन में यथावत् रखा जाए।

2.10.4 संस्कृत के तत्सम शब्द 'शय्या' को 'शैया' न लिखा जाए।

2.11 पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर'

2.11.1 पूर्वकालिक कृदंत प्रत्यय 'कर' क्रिया से मिलाकर लिखा जाए। जैसे :– मिलाकर, खा-पीकर, रो-रोकर आदि।

2.11.2 कर + कर से 'करके' और करा + कर से 'कराके' बनेगा।

2.12 वाला

2.12.1 क्रिया रूपों में 'करने वाला', 'आने वाला', 'बोलने वाला' आदि को अलग लिखा जाए। जैसे :– मैं घर जाने वाला हूँ, जाने वाले लोग।

2.12.2 योजक प्रत्यय के रूप में 'घरवाला', 'टोपीवाला' (टोपी बेचने वाला), दिलवाला, दूधवाला आदि एक शब्द के समान ही लिखे जाएँगे।

2.12.3 'वाला' जब प्रत्यय के रूप में आएगा तब तो 2.12.2 के अनुसार मिलाकर लिखा जाएगा; अन्यथा अलग से। यह वाला, यह वाली, पहले वाला, अच्छा वाला, लाल वाला, कल वाली बात आदि में वाला निर्देशक शब्द है। अत इसे अलग ही लिखा जाए। इसी तरह लंबे बालों वाली लड़की, दाढ़ी वाला आदमी आदि शब्दों में भी वाला अलग लिखा जाएगा। इससे हम रचना के स्तर पर अंतर कर सकते हैं। जैसे :– गाँववाला - villager गाँव वाला मकान - village house

2.13 श्रुतिमूलक 'य', 'व'

2.13.1 जहाँ श्रुतिमूलक य, व का प्रयोग विकल्प से होता है वहाँ न किया जाए, अर्थात् किए : किये, नई : नयी, हुआ : हुवा आदि में से पहले (स्वरात्मक) रूपों का प्रयोग किया जाए। यह नियम क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि सभी रूपों और स्थितियों में लागू माना जाए। जैसे :– दिखाए गए, राम के लिए, पुस्तक लिए हुए, नई दिल्ली आदि।

2.13.2 जहाँ 'य' श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर शब्द का ही मूल तत्व हो वहाँ वैकल्पिक श्रुतिमूलक स्वरात्मक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे :– स्थायी, अव्ययीभाव, दायित्व आदि (अर्थात् यहाँ स्थाई, अव्यईभाव, दाइत्व नहीं लिखा जाएगा)।

2.14 विदेशी ध्वनियाँ

2.14.1 उर्दू शब्द

उर्दू से आए अरबी-फ़ारसी मूलक वे शब्द जो हिंदी के अंग बन चुके हैं और जिनकी विदेशी ध्वनियों का हिंदी ध्वनियों में रूपांतर हो चुका है, हिंदी रूप में ही स्वीकार किए जा सकते हैं। जैसे :– कलम, किला, दाग आदि (क़लम, क़िला, दाग़ नहीं)। पर जहाँ उनका शुद्ध विदेशी रूप में प्रयोग अभीष्ट हो अथवा उच्चारणगत भेद बताना आवश्यक हो, वहाँ उनके हिंदी में प्रचलित रूपों में यथास्थान नुक्ते लगाए जाएँ। जैसे :– खाना : ख़ाना, राज : राज़, फन : हाइफ़न आदि।

2.14.2 अंग्रेज़ी शब्द

अंग्रेज़ी के जिन शब्दों में अर्धविवृत 'ओ' ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके शुद्ध रूप का हिंदी में प्रयोग अभीष्ट होने पर 'आ' की मात्रा के ऊपर अर्धचंद्र का प्रयोग किया जाए (ऑ, ॉ)। जहाँ तक अंग्रेज़ी और अन्य विदेशी भाषाओं से नए शब्द ग्रहण करने और उनके देवनागरी लिप्यंतरण का संबंध है, अगस्त-सितंबर, 1962 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा वैज्ञानिक शब्दावली पर आयोजित भाषाविदों की संगोष्ठी में अंतरराष्ट्रीय शब्दावली के देवनागरी लिप्यंतरण के संबंध में की गई सिफ़ारिश उल्लेखनीय है। उसमें यह कहा गया है कि अंग्रेज़ी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण इतना क्लिष्ट नहीं होना चाहिए कि उसके वर्तमान देवनागरी वर्णों में अनेक नए संकेत-चिह्न लगाने पड़ें। अंग्रेज़ी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण मानक अंग्रेज़ी उच्चारण के अधिक-से-अधिक निकट होना चाहिए।

2.14.3 द्विधा रूप वर्तनी

हिंदी में कुछ प्रचलित शब्द ऐसे हैं जिनकी वर्तनी के दो-दो रूप बराबर चल रहे हैं। समाज में दोनों रूपों की एक-सी मान्यता है। कुछ उदाहरण हैं :– गरदन/गर्दन, गरमी/गर्मी, बरफ़/बर्फ़, बिलकुल/बिल्कुल, सरदी/सर्दी, कुरसी/कुर्सी, भरती/भर्ती, फ़ुरसत/फ़ुर्सत, बरदाश्त/बर्दाश्त, वापस/वापिस,आखिरकार/आखीरकार, बरतन/बर्तन, दुबारा/दोबारा, दुकान/दूकान, बीमारी/बिमारी आदि। इन वैकल्पिक रूपों में से पहले वाले रूप को प्राथमिकता दी जाए।

2.15 अन्य नियम

2.15.1 शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहेगा।

2.15.2 फ़ुलस्टॉप (पूर्ण विराम) को छोड़कर शेष विरामादि चिह्न वही ग्रहण कर लिए गए हैं जो अंग्रेज़ी में प्रचलित हैं। यथा :– - (हाइफ़न/योजक चिह्न), – (डैश/निर्देशक चिह्न), :– (कोलन एंड डेश/विवरण चिह्न), (कोमा/अल्पविराम), ; (सेमीकोलन/अर्धविराम), : (कोलन/उपविराम), ? (क्वश्चनमार्क/प्रश्न चिह्न), ! (साइन ऑफ़ इंटेरोगेशन/विस्मयसूचक चिह्न), ' (अपोस्ट्राफ़ी/ऊर्ध्व अल्प विराम), " " (डबल इन्वर्टेड कोमाज़/उद्धरण चिह्न), ' ' (सिंगल इन्वर्टेड कोमा/शब्द चिह्न). (), { }, [ ] (तीनों कोष्ठक), ... (लोप चिह्न), (संक्षेपसूचक चिह्न)/(हंसपद)।

2.15.3 विसर्ग के चिह्न को ही कोलन का चिह्न मान लिया गया है। पर दोनों में यह अंतर रखा गया है कि विसर्ग वर्ण से सटाकर और कोलन शब्द से कुछ दूरी पर रहे। (पूर्व सन्दर्भ 2.7.7 और 2.7.7.1)

2.15.4 पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का ही प्रयोग किया जाए। वाक्य के अंत में बिंदु (अंग्रेज़ी फ़ुलस्टॉप .) का नहीं।

धन्यवाद

प्रस्तुति-डॉ.जशाभाई पटेल

एसोसियेट प्रोफेसर

नरोड़ा कॉलेज,हिंदी विभाग

डॉ.जशाभाई पटेल